शांतिज्ञाता

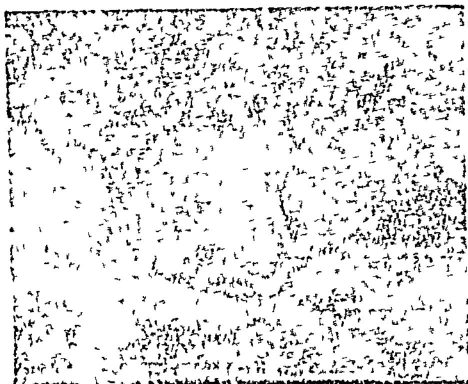
# भगवान शांतिनाथ



विश्व धर्म प्रेरक, प्रात स्मरणीय मुनिवर –

श्री विद्यानन्द जी महाराज के

चरण पथ पर…



## स्वात्म योग : मोक्ष

वाद, शास्त्रार्थ, तर्क, युक्ति तथा स्थापनाक्षरो मे "समय" नही है वह तो लब्धि अक्षरो मे है। जैसे नदी के उसपार पहुँचने के लिए नौका का आश्रय लिया जाता है, वहाँ पहुँच जाने पर नौका को कोई नही पूछता, कोई उसे मस्तक पर उठाकर नही घूमता, वैसे ही शास्त्रो के स्थापनात्मक अक्षर है। इनमे भेद विज्ञान का परिज्ञान प्रयोजनीय है। वे अक्षर अध्याय, श्लोक, सख्या लब्धिवेदी से नीचे रह जाते है। जैसे "दण्डी पुरुष" मे दण्ड पुरुष का स्व लक्षण नहीं है वैसे ही समयसार (आत्म-योग) के लिए समयसार (शास्त्र) स्वलक्षण नही है उसका स्वलक्षण तो उपयोग है, चित् स्वभाव है।

—विद्यानन्द मुनि

("निर्मल आत्मा ही समयसार" से साभार)

प्रकाशक :

अनिल पाकेट बुक्स ईश्वरपुरी मेरठ शहर



*SHANTI DATA BHAGWAN SHANTI NATH*

*PRICE Rs. 2/—*

# सौभाग्य !

देश ।

मेरा प्यारा देश ।

भारत-देश ।

जहाँ कर्मवीरो ने, धर्मवीरो ने, शूरवीरो ने, रणधीरो ने, और योगीश्वरो ने आकर जन्म लिया। जिसकी गोद मे सदैव हरियाली लहलहाती रही। जिसके आगन मे शीतल मिष्ट जल की मदमाती सरिताये अपनी मधुर लहरो की पायल बजाती रही। जहाँ फल फूलो से लदे वनो, उपवनो मे रग बिरगे विहग नाचते रहे और जहाँ स्वर्ग के देवो ने भी स्वर्ग छोड कर जन्म लेना चाहा। उसी महान् भारत देश मे अवतरित महान् आत्मा—जिसने तीनो लोको के प्राणियो की दु ख कालिमा मिटाई जिसने शान्ति का स्रोत बहाया, जिसने सोलहवे तीर्थंकर का पद विभूषित किया—आज, उसी शान्ति प्रदाता भगवान शान्तिनाथ का हृदयालोकित चित्रण चित्रित करने का मुझे सौभाग्य उपलब्ध हुआ है।

शान्ति ! शान्ति ! ! शान्ति ! ! !

(रानीमिल, मेरठ) प० वसन्त कुमार जैन शास्त्री

## अनुक्रमणिका--

# शान्तिप्रदाता—शान्तिनाथ

अन्ये तावदि हासंता भगवंता मध्येऽपि तीर्थेशिनां,
कोऽसौ द्वादश जन्मसु प्रतिभवं प्रापत्प्रवृद्धि पराम् ।
मुक्त्वा शान्ति जिनं ततो बुधजना ध्यायन्तु सर्वोत्तरं,
सार्वं शान्ति जिनेन्द्रमेव सततं शान्ति स्वयं प्रेप्सवः ॥

(उत्तरपुराण ६३ पर्व, ६०६)

इस ससार मे अन्य मानवो की वात तो जाने दीजिये, शान्तिनाथ जिनेन्द्र को छोडकर भगवान तीर्थकरो में भी ऐसा कौन है जिसने बारह भवो मे से प्रत्येक भव मे अन्यन्य समृद्धि प्राप्त की हो ? इसलिये हे ज्ञानी मानव, यदि तुम शान्ति चाहते हो तो सवसे उत्तम और सर्वहितैषी शान्ति प्रदाता श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र का निरन्तर ध्यान करते रहो ।

# मंगलाचरण

## श्रद्धा एवं भक्ति से परिपूर्ण महान् मंत्र

## णमोकार मंत्र

**णमो अरहन्ताणं। णमो सिद्धाणं।**

**णमो आयारियाणं। णमो उवज्झायणं।**

**णमो लोए सव्व साहूणं।**

... णमोकार या नमस्कार मँत्र एक अद्भुत अनुभित्तियो से पूर्ण महान् सतपथ प्रदर्शक मत्र है। जिसमे किसी भी व्यक्ति विशेप, या धर्म विशेप, या सम्प्रदाय विशेप का आक्षेप नही है। यह प्राणीमात्र का हितकारी, पाप विनाशक मंत्र है।

इस मत्र मे

**सर्व अरहन्तों**—(वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी)

**सर्व सिद्धों**—(कर्ममल से विमुक्त आत्म लीन)

**सर्व आचार्यो**—(महान् त्यागी, सयमी, निष्पृही,दीक्षा देने के अधिकारी सन्त)

**सर्व उपाध्यायों**—(निष्पृही, निग्रन्थ पद के धारी, पठन पाठन मे लीन)

**सर्व साधुवों**—(ससार, शरीर, भोग से विरक्त ज्ञान, ध्यान तप मे लीन निर्ग्रंथ पद के सन्त)

को भाव पूर्वक नमस्कार, उनके जैसा ही वनने के लिए किया गया है।

इस मत्र के बीजाक्षरो से ही (ओम्) की रचना हुई है। यथा:—

अरहन्त का अ, सिद्ध अर्थात् अशरीरी का अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ, और साधु अर्थात् मुनि का म, वीजाक्षर लेकर= अ+अ+आ+उ+म्=ओम् की रचना हुई है। जो ध्यान करने है। मगल कारी है और पाप विनाशक है।

# पूर्वभव की पृष्ठ भूमिका

## बन्द करो यह हिंसानन्द !

एक गम्भीर और ओज भरी वाणी ने सभी को चौका दिया। दर्शक, जो दो प्राणियो के द्वन्द-युद्ध मे आनन्द मान मानकर उछल रहे थे, कह कहे लगा रहे थे, प्रतिद्वन्दियो को जोश दिला दिला कर जोर जोर से लडने को उत्साहित कर रहे थे ।वे सब चुप रह गये । शोर गुल सब शान्त हो गया और सबकी गरदने इस प्रकार झुक गई मानो लताये मुर्झा गई हो ।

कैसा था यह प्रतिद्वन्द ? और कौन थे ये जिन्होने अपनी गम्भीर और ओज भरी वाणी से सबको खामोश कर दिया ।

वही ओज पूर्ण वाणी पुनः मुखरित हुई "ओह ! आप सब कैसे लोग है ? आप सब आनन्द मान रहे हैं और ये दोनो लडभिड कर खून से लथपथ हो रहे है। क्या आप ने इनकी आत्मा की आवाज सुनी ? ·········जिसमे से दु खभरी आहे निकल रही है। इन्हे अपार दु ख हो रहा है और आप सब इसे खेल मान रहे है । इस हिंसा क्रीडा का प्रारम्भ किसने किया है ? ······जवाब दो !"

अब कौन जवाव दे ! किसकी हिम्मत थी जो उनसे निगाह मिला सके ? सब अपराधी वने, वुत हुये खड़े थे—सिर नीचा किये हुये। तभी फिर आदेश हुआ ······ "यो खामोशी से आप की आत्मा मे लगा पाप का मैल धुल नही सकेगा। जितना पाप छिपाओगे उतना ही आत्मा के प्रदेशो मे कलुषित आवरण छाता रहेगा। बोलो ······"किसने यह दुस्साहस किया है ?"

"अपराध क्षमा हो स्वामिन्। ······ महारानी प्रियमित्रा की दासी सुषेणा ने ही आकर यहाँ ललकार के हमे उत्साहित किया है। उसी ने ······"

"हाँ ! हाँ ! कहती जाओ········ रुको नही।"

"उसी ने अपने जोशीले वचनो से यहाँ कहा कि जो भी मुर्गा, मेरे इस मुर्गे से जीत जायगा। उसी मुर्गे के मालिक को एक हजार दिनार दिया जायेगा और जब मैंने यह सुना तो········"

"तो तुम भी अपना मुर्गा ले आई। एक हजार दीनार के लोभ मे आकर। क्यो, यही कहना चाहती हो। ······"

"हा महाराज ! ·····"

"अरी भोली आत्माओ ! तुम्हारी बुद्धि कहाँ चल बसी। इतने बडे राज्य घराने की दासियाँ होकर भी तुम्हारा लोभ समाप्त नही हो सका। तुम्हारे लोभ ने इन बेचारो को लोहु लुहान कर दिया। जाओ। ले जाओ इन्हे······ पहले इनका उपचार कराओ और फिर इन्हे मुक्त कर दो।"

सभी दर्शक सिर झुका कर चले गये। दोनो दासियाँ भी अपने अपने निवास पर पहुँची। बडी महारानी प्रियमित्रा ने अपनी दासी की इस कुकृति पर उसे बहुत कुछ कहा। उधर छोटी रानी मनोरमा की दासी को जब महारानी मनोरमा ने देखा तो अपने आप से कहा—"लोभ मे आकर इन्सान कितना गिर जाता है।" दासी ने सुना और उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह नरक की यातना सह रही हो।

तभी महाराज अपने शयन कक्ष में आये। उदास गम्भीर। विचार मग्न। ·········

"·······कैसे कैसे मानव है। अपने परिणामो को क्यो बिगाड़ लेते हैं ये ? क्या इस प्रकार दो प्राणियो को आपस मे लड़ाकर इन्हे वास्तविक आनन्द मिल जाता है ? ······अज्ञानी ! महान् अज्ञानी।"

"आपको इस प्रकार चिन्तित नही होना चाहिये। जो होना था सो हो गया। ······ पर ये मुर्गे लड़े ही क्यो ? इन्हे भी तो नही लडना चाहिए था।"—महारानी मनोरमा ने महाराज की परिचर्या करते हुये कहा।

महाराज एक टीस के साथ मुस्कराए। बोले "···रानी! तुम भी भोली हो। ये मुर्गे तो मूर्ख थे ही, अपने कर्मोदय से परतन्त्र थे ही पर यह मानव ······जिसमे पशुओ से अधिक विशेषता है वह भी क्यो अज्ञानी वन जाता है। मैं तुम्हे बताऊँ रानी—कि ये दोनो मुर्गे अपने पूर्व भव मे भी दोनो भाई थे। दोनो ही मूर्ख! केवल लोभ मे आकर दोनो ही एक बैल के लिये लड पडे थे। एक दूसरे को मार डालने का सकल्प कर बैठे थे और यो लड-भिडकर बैर बाध कर प्राण खो बैठे थे। आज वही बैर फिर उनके सामने आगया था। ओह! कैसा अज्ञानी है यह प्राणी। जिसकी आत्मा परमात्मा तक बन सकती है वही प्राणी अज्ञानता के वश हो नारकी और तिर्यच भी बन जाता है। ओह!

× × × ×

**पूर्व विदेह क्षत्र का पुष्कलावती देश।**

पुष्कलावती देश की महा रमणीक, धन धान्य से सम्पन्न, प्रसन्नता को गोद मे लिये, पवित्रात्माओ की वाणी से गु जित सभी साधन-प्रसाधनो से सुसज्जित पुण्डरीकणी नाम की एक नगरी।

उस नगरी मे अवतरित तीर्थंकर धनरथ के होनहार व सर्वगुण सम्पन्न सुपुत्र मेघरथ का मनोज्ञ-मनोरम भवन था जिसमे राजा मेघरथ अपनी दोनो पतिव्रता व धर्म परायणता रानियो के साथ स्वर्गोपम सुख भोग रहे थे। ससार की असारता समझकर तीर्थंकर धनरथ तो मुनि बन गये थे और राज्यपाट के सभी कार्य अब युवराज मेघरथ ही कर रहे थे।

मेघरथ, ज्ञानी भी थे और दानी भी थे। दया के तो सागर थे। महान् पुण्योदय के कारण ही इन्हे सर्वसुख प्रसाधन उपलब्ध हुये थे। इनकी बडी रानी प्रियमित्रा व छोटी रानी मनोरमा दोनो ही साक्षात लक्ष्मी थी। विनम्रता की मूर्ति थी और सौन्दर्य मे परिपूर्ण थी।

"हाँ ! हाँ ! कहती जाओ········ रुको नहीं।"

"उसी ने अपने जोशीले वचनो से यहाँ कहा कि जो भी मुर्गा, मेरे इस मूर्गे से जीत जायगा। उसी मुर्गे के मालिक को एक हजार दिनार दिया जायेगा और जब मैंने यह सुना तो········"

"तो तुम भी अपना मुर्गा ले आई। एक हजार दीनार के लोभ मे आकर। क्यो, यही कहना चाहती हो। ······"

"हां महाराज ! ·····"

"अरी भोली आत्माओ ! तुम्हारी बुद्धि कहाँ चल वसी। इतने वडे राज्य घराने की दासियाँ होकर भी तुम्हारा लोभ समाप्त नही हो सका। -तुम्हारे लोभ ने इन बेचारो को लोहु लुहान कर दिया। जाओ। ले जाओ इन्हे······ पहले इनका उपचार कराओ और फिर इन्हे मुक्त कर दो।"

सभी दर्शक सिर झुका कर चले गये। दोनो दासियाँ भी अपने अपने निवास पर पहुँची। वडी महारानी प्रियमित्रा ने अपनी दासी की इस कुकृति पर उसे बहुत कुछ कहा। उधर छोटी रानी मनोरमा की दासी को जब महारानी मनोरमा ने देखा तो अपने आप से कहा—"लोभ मे आकर इन्सान कितना गिर जाता है।" दासी ने सुना और उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह नरक की यातना सह रही हो।

तभी महाराज अपने शयन कक्ष मे आये। उदास गम्भीर। विचार मग्न। ·········

"·······कैसे कैसे मानव है। अपने परिणामो को क्यो विगाड लेते है ये ? क्या इस प्रकार दो प्राणियो को आपस मे लड़ाकर इन्हे वास्तविक आनन्द मिल जाता है ? ······अज्ञानी ! महान् अज्ञानी।"

"आपको इस प्रकार चिन्तित नही होना चाहिये। जो होना था सो हो गया। ······ पर ये मुर्गे लडे ही क्यो ? इन्हे भी तो नही लड़ना चाहिए था।"—महारानी मनोरमा ने महाराज की परिचर्या करते हुये कहा।

महाराज एक टीस के साथ मुस्कराए। बोले "···रानी! तुम भी भोली हो। ये मुर्गे तो मूर्ख थे ही, अपने कर्मोदय से परतन्त्र थे ही पर यह मानव ······जिसमे पशुओ से अधिक विशेषता है वह भी क्यो अज्ञानी वन जाता है। मैं तुम्हे वताऊँ रानी—कि ये दोनो मुर्गे अपने पूर्व भव मे भी दोनो भाई थे। दोनो ही मूर्ख ! केवल लोभ मे आकर दोनो ही एक वैल के लिये लड पडे थे। एक दूसरे को मार डालने का सकल्प कर वैठे थे और यो लड-भिडकर वैर वाध कर प्राण खो वैठे थे। आज वही वैर फिर उनके सामने आगया था। ओह ! कैसा अज्ञानी है यह प्राणी। जिसकी आत्मा परमात्मा तक वन सकती है वही प्राणी अज्ञानता के वश हो नारकी और तिर्यच भी वन जाता हे। ओह !

× × × ×

**पूर्व विदेह क्षत्र का पुष्कलावती देश।**

पुष्कलावती देश की महा रमणीक, धन धान्य से सम्पन्न, प्रसन्नता को गोद मे लिये, पवित्रात्माओ की वाणी से गु जित सभी साधन-प्रसाधनो से सुसज्जित पुण्डरीकणी नाम की एक नगरी।

उस नगरी मे अवतरित तीर्थंकर धनरथ के होनहार व सर्वगुण सम्पन्न सुपुत्र मेघरथ का मनोज्ञ-मनोरम भवन था जिसमे राजा मेघरथ अपनी दोनो पतिव्रता व धर्म परायणिता रानियो के साथ स्वर्गोपम सुख भोग रहे थे। ससार की असारता समझकर तीर्थंकर धनरथ तो मुनि वन गये थे और राज्यपाट के सभी कार्य अव युवराज मेघरथ ही कर रहे थे।

मेघरथ, ज्ञानी भी थे और दानी भी थे। दया के तो सागर थे। महान् पुण्योदय के कारण ही इन्हे सर्वसुख प्रसाधन उपलब्ध हुये थे। इनकी वडी रानी प्रियमित्रा व छोटी रानी मनोरमा दोनो ही साक्षात लक्ष्मी थी। विनम्रता की मूर्ति थी और सौन्दर्य मे परिपूर्ण थी।

दोनो रानियो की प्रमुख दोनो दासियो (सुषेणा और काचना) ने ही अपने अपने मुर्गे का वाद प्रतिवाद करके द्वन्द युद्ध कराया था। जिन्हे यह भी भान नही था कि एक दूसरे को लड़ाकर अपने आपको आनन्दित माना जाना हिंसानन्द कहलाता है और महान दुःख का प्रदाता रोद्रध्यान होता है।

महाराज मेघरथ ने जब यह देखा तो उनकी आत्मा वास्तवि-कता से दयार्द्र हो गई थी और यह द्वन्द-युद्ध बन्द कराया था। महाराज मेघरथ की ज्ञानमय अमृत वाणी का प्रभाव सभी पर अमिट हुआ था। ··· किन्तु महाराज मेघरथ की आत्मा विशेष झकृत हो उठी थी। कभी वैराग्य और कभी मोह। दोनो के बीच झूल रहे थे। वे आज अपने पिता तीर्थकर को याद कर रहे थे। हृदय की बात मुख-रित हो उठी—

प्रभु! आपने निज मुख-सुधा का दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है पर चित्त ने उसका न कुछ भी फल लिया॥
आनन्द-रस मे डूबकर सदवृत्त वह होता नही,
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण बडा बस है यही॥

रानी प्रियमित्रा ने जब यह पद्य सुना तो छोटी रानी मनोरमा की ओर देखा। रानी मनोरमा भी समझ गई कि आज प्रियतम का मन ससार से उदास सा हो गया है। कही ऐसा न हो कि हमे छोड-कर······

"क्या सोच रही हो मनोरमा।" प्रियमित्रा ने मनोरमा को गहरे चिन्तवन मे डूबे देखकर पूछा।

"अ।······· ओह। कुछ नही। कुछ भी तो नही। वैसे ही ·········वैसे ·······मनोरमा कह न सकी। पर प्रियमित्रा मन की बात चेहरे से तुरन्त जान लेती थी। उसने कहा—मैं समझ गई। जो तेरे मन मे है वही मेरे मन मे भी है। जरूर इसका उपाय किया जाएगा। देख ·· ·· अब शायद महाराज को निद्रा देवी ने अपने

अ क से लगा लिया है। चल उठ—हमभी सो जायें।

× × × ×

मगल प्रभाती की रागिनी सुनकर महाराज मेघरथ ने करवट वदली। पास ही के उद्यान मे रगविरगी चिड़ियो की चुलवुल प्रारम्भ हो चुकी थी। तभी मुर्गा भी वोला—और महाराज मेघरथ एक दम उठ वैठे। सामने दोनो रानिया विनम्र भाव से खडी थी। महाराज को जागृत देख, दोनो ने प्राणपति के चरण छुए। दोनो ने महाराज के मुखारविन्द की ओर देखा। महाराज, अव भी उदास थे। मनोरमा ताड गई कि महाराज के हृदय पर कल का वह निरर्थक द्वन्द युद्ध प्रभाव छोड गया है। ········· प्रियमित्रा ने भी देखा और तभी उसने अपनी मीठी मधुर विनम्र वाणी मे निवेदन किया—

"स्वामिन्। क्या आप आज मुस्कराओगे नही। सदैव तो आप मुस्कराकर हमे ········"

"मुस्कराते मुस्कराते तो जीवन का वहुत भाग मैंने खो दिया है प्रियमित्रा। आज तो गहराई मे उतर लेने दो।" महाराज ने वीच मे ही वात काट कर कहा।

"गृहस्थावस्था मे यह गहराई एक पीडा उत्पन्न कर देती है स्वामिन्। एक निवेदन प्रस्तुत करू ?"

"कहो! कहो!"

"आप सदैव उपवन मे भ्रमण के लिए जाया करते हैं—क्या आज नही चलिएगा ?"

"आज मन नही कर रहा है प्रियमित्रा।"

"मन तो कर रहा है स्वामिन, पर आप उसे दवोच रहे हैं। उठिए, रथ तैयार है। मैंने रथवान को आदेश दे दिया था। क्यो मनोरमा—रथ तैयार है ना ?"

"तैयार है।·········उठिए स्वामिन्। देखिए, कितना भोर हो गया है। उठिए········"

ग्रोर यों दोनो रानियों के साथ राजा मेघरथ रथ मे विराज-मान हो गए, रथ नगर से बाहर महान् रमणीक स्वच्छ, मन्द सुगन्ध पवन को प्रसारित करने वाले उपवन की ग्रोर चल पड़ा। दोनो रानियो ने देखा कि महाराज ग्रव भी उदास से ही है। रथ दौड रहा था। हिचकोले से कभी प्रियमित्रा ग्रौर कभी मनोरमा ग्रपने प्राण-प्रिय के ग्र क से ग्रा लगती थी। पर महाराज को जैसे कुछ भी भान न था।

रथ उपवन के द्वार पर पहुँचा। तीनो रथ से उतरे ग्रौर महान् विशाल ग्रौर स्फटिक सी स्वच्छ चन्द्रकान्त शिला पर जा विराजमान हुए। ज्यो ही मन्द सुगन्ध पवन ने तीनो का स्पर्श किया तो तीनो ही ग्रानन्दित हो उठे। ग्रव मेघरथ ने प्रियमित्रा की ग्रोर ग्रौर फिर मनोरमा की ग्रोर देखा। महाराज मेघरथ के नेत्रो मे ग्रब मुस्कान थी। दोनो रानिया महाराज की गोदी मे लेट गई। महाराज मेघरथ के दोनो हाथ दोनो रानियो के सघन सुन्दर कोमल केश पर थे।

दोनो रानिया ग्राज फूली नही समा रही थी। दोनो के शरीर मे मीठी स्पन्दन हो रही थी ग्रौर ग्रपनी सुध बुध विसार कर सव कुछ पाकर भी सब कुछ खो रही थी। समय कितना व्यतीत हुग्रा यह दोनो रानियां न जान सकी। तभी.........

"क्षमा! क्षमा! क्षमा करिए कृपा-निधान। मैं ग्रापसे ग्रपने प्राणेश के जीवन की भीख मागती हूँ। ......... मैं ......... लुट जाऊगी राजन्। मेरी ग्रोर ...... केवल मुझ ग्रनला की ग्रोर ......... मेरे सुहाग की ग्रोर ......... कृपा दृष्टि करिए। मैं ग्रापके चरणो मे ग्रपना सब कुछ न्यौछावर कर सकती हूँ पर मेरे प्राणेश के जीवन का दान दे दीजिए ......... दे दीजिए ......... दे दीजिए ........."

एक नारी, सौन्दर्य की मूर्ति, ग्रत्यन्त दुखी होकर महाराज मेघ-रथ के समक्ष सिर झुका झुकाकर गिड गिड़ा रही थी। नेत्रो से

आंसूओ का सागर वहा रही थी।

दोनो रानियाँ देखती ही रह गईं। आश्चर्यान्वित हो उन दोनों ने अपने पति की ओर देखा और पूछ बैठी······

"यह क्या रहस्य है स्वामिन्? कौन है यह नारी? क्यो इस प्रकार रो रही है? यह आप से क्या चाहती है?······" एक साथ कई प्रश्न कर बैठी दोनो रानियाँ। तभी ······जिस चन्द्रकान्त शिला पर महाराज मेघरथ के साथ दोनो रानियाँ विराजमान थी उसके नीचे से एक सुडौल, सुन्दर, नवजवान, कुचला सा धूलि धूसर हुआ निकला और मेघरथ महाराज के चरणो मे आ गिरा।

"अरे!!!···· दोनो रानिया पुनः चौकी। "यह क्या रहस्य है स्वामिन्! समझाओ ना हमे। हम तो······ हम तो·····"

"व्याकुल मत हो प्रिये। तुम्हे मैं सब कुछ बतलाता हूँ। उधर देखो······ ऊपर··· हाँ वह जो विमान देख रही हो ना, वह इन्ही दोनो का है। यह पुरुष विद्याधर है और यह नारी इसकी पत्नी है।"

"पर महाराज यहाँ··· इस शिला के नीचे······???"

"हाँ! हाँ बता तो रहा हूँ।······जब ये दोनों विमान मे बैठे जा रहे थे तो ज्यो ही इनका विमान हमारे ऊपर से गुजरा कि तुरन्त रुक गया ना आगे बढा और ना पीछे हटा।"

"अरे! क्यो? ऐसा क्यो हुआ महाराज······?" मनोरमा ने पूछ लिया।

"अहो! हो! कह तो रहा हूँ।···सुनो··· जब इस विद्याधर ने अपने विमान को रुका जाना तो इसने नीचे देखा और मन मे यह धारणा कर बैठा कि इनका विमान हमने ही रोक दिया है। और हमें अपना शत्रु समझ कर विमान से नीचे आ—हमारी शिला के नीचे घुस गया।"

"क्यो???······प्रिय मित्रा ने रहस्य पर से आवरण हटने

की घटना मे रुचि लेते हुए पूछा।

"क्यो कि इसका विचार था कि यह शिला को हम तीनो सहित ऊपर उठा कर उलट देगा जिससे हमारा अहित हो जाय।"

"हाय भगवान ! "मनोरमा काँप उठी।

"मैंने शिला के नीचे घुसते इसे देख लिया था—और यह भी जानलिया था कि यह विद्याधर है—अवश्य ही शिला को उलट देगा। ···मैंने अपने पैर का अगूठा थोड़ा शिला पर दबा दिया जिससे वेचारा यह विद्याधर दब कर कुचला जाने लगा।"

"अच्छा हुआ ······ यह तो हमे मारने को आया था।" प्रिय-मित्रा ने आँखे तरेरते हुये कहा।

"पगली कही की ! किसी के मारने से भी भला कोई मरता है। मात्र प्राणी अपने परिणाम को बिगाड़ कर पाप का बन्ध कर बैठता है। ···हाँ तो··· जब विमान मे बैठी इसकी पत्नी ने जाना कि पति देव सकट में है तो अपने पति के जीवन की भीख माँगने यहाँ दौडी आई। ······ मुझे क्या करना था, मैंने भी अंगूठा ढ़ीला किया तो यह विद्याधर भी अपने आप को बचाने बाहर आ निकला।"

"ओफ ! कितना दुष्ट है यह विद्याधर।" ···रानी मनोरमा ने ने घृणा की दृष्टि से विद्याधर की ओर देखकर कहा।

"कोई दुष्ट नही है। कोई दुष्ट नही होता रानी ! ···मात्र यह मानव अपने आप को अज्ञान के वश हो गिरा बैठता है।"

"पर महाराज, यह विमान रुका क्यों ?" प्रियमित्रा ने समाधान चाहते हुये पूछा।"

"प्रिय ! यह सिद्धान्त है कि महान्–पुण्यात्मा, महान तपस्वी और चरमशरीरी के ऊपर से या कोई महान् शत्रु हो उसके ऊपर से विमान गुजर नही सकता। अब यह पहचानना कि नीचे कौन है—उस विमान मे बैठे हुए की बुद्धि पर निर्भर है।"

"तो महाराज। हमे क्षमादान मिल गया है ना ?" ·········

विद्याधर ने नम्रता से निवेदन कर पूछा ।

"हा । हा । अब तुम जा सकते हो । पर याद रखना, पहिले निर्णय, पश्चात क्रिया ? समझे ।"

"समझ गया स्वामिन् । जय हो आपकी ।"

और यो दोनो विद्याधर—पति पत्नी रवाना हुए । राजा मेघ-रथ के वैराग्य की फिर जागृति हुई और अपने आपमे खोगए । दोनो रानियो ने अपने प्राणपति की ओर देखा, और ताड गई कि फिर मामला गोल हो गया ।

"चलिये महाराज ! समय हो गया ।"

"हॉ ! हॉ ! चलो सचमुच समय हो ही गया । समय को व्यर्थ न जाने देना ही बुद्धिमानी है । तुमने सच ही कहा है—रानी कि समय हो गया ।"

× × × ×

राजा मेघरथ शुद्ध सम्यकदृष्टि थे । सासारिक विपय वासना के बीच रहते भी वह "जल से भिन्न कमल" की भॉति थे । परम शास्त्र के ज्ञाता, और महान विचारक थे । प्रत्येक पर्व पर मुनि की भाँति जीवन व्यतीत करते थे । किसी के प्रति न द्वेष था और न घृणा । वाहर भी शुद्ध और अन्तरग मे भी शुद्ध । वे समझ गये थे कि ससार का यह रग मच मात्र नाट्यशाला है । ना यहाँ कोई अपना और ना कोई पराया ।

एक दिन जबकि अष्टाह्निका का पर्व था—महाराज मेघरथ एकान्त मे आठ दिन का योग साधकर ध्यान मग्न हो वैठ गये । आठ दिन का चार प्रकार के आहार का त्याग कर निष्पृही हो, आत्म चिन्तन मे मग्न हो गये ।

उसी समय स्वर्ग मे देवो की सभा मे ईशान-इन्द्र ने यह जानकर वडे हर्ष से कहा— "अहा ! आश्चर्य है कि आज ससार मे तू ही शुद्ध और निश्चल सम्यक्दृष्टि है और तू ही वीर है धीर है । धन्य ......है तुझे ...धन्य है ।"

"कौन धन्य है इन्द्र देव महाराज ?" आप किसकी स्तुति कररहे हो ?" एक देव ने पूछा ।

"मै पुण्डरीकणी नगरी के महान राजा मेघरथ की स्तुति कर रहा हूँ । वह आज किन शुद्ध भावों से प्रतिमा योग धारण किए ध्यान मग्न है । अहा ! देखते ही आनन्द आता है ।"

सब देवो ने भी अपने अपने अवधि ज्ञान से जाना और सभी ने सराहना की । पर नारी जाति…? भला वह कैसे सहन करले किसी का यश । अपने आप ही कुढ़ गई । इन्द्र सभा मे से दो देवियाँ, अतिरूपा और सुरूपा उठी, और चुपके से एकान्त मे जाकर मेघरथ की परीक्षा लेने का आयोजन किया ।

उधर महाराज मेघरथ तो ध्यान मग्न थे । निश्चल और निर्भय । तभी दोनो देवियाँ अपने अनुपम सौन्दर्य को सिमेटे यहाँ आ पहुँची । और नारीयोचित हाव भाव, विलास, बातचीत, अग स्पर्श, आदि क्रियाये करनी शुरू की । महाराज मेघरथ के शरीर से बेल की तरह लिपटती हुई एक देवी ने कहा—

"उठो ना महाराज ! यहाँ क्या पत्थर से बने बैठे हो । मैं कब से आप के दर्शनों की प्यासी हूँ । ओह ! कैसा सुन्दर सुडौल, शरीर है आप का ।— क्या कान्ति है आपके चहरे पर । आप तो मेरे है महाराज और मैं आपकी हूँ । ……उठिये…उठिये ना…"

"ना बाबा ना, ये तो मेरे है । मैं ही इन्हे सर्व सुख दे सकती हूँ । देख मेरा शरीर और शरीर का प्रत्येक अग । आइए महाराज —मेरे पास आइए…आज मैं अपना सब कुछ न्योछावर कर रही हूँ । नैना खोलियेगा… उठिये…… उठिये ।"

दोनो थक गई । पर क्या महाराज मेघरथ विचलित हुये ?… नही । उन्हें तो अपने आप का भी भान नही था । वे तो आत्म चिन्तन मे मग्न थे । वे सच्चे वीर थे । उनकी आत्मा विषयो से निर्लिप्त थी ।

दोनो देविया हार मान, और इन्द्र देव के कथन की पुष्टि जानकर विविध प्रकार से महाराज मेघरथ की स्तुति कर और अपने किये की क्षमा माग कर चुपचाप वहाँ से चलती बनी।

आठ दिन के पर्व के पश्चात् महाराज मेघरथ जब उठे तो उनकी आत्मा निर्मल हो उठी थी। उनके वैराग्य को बल मिल चुका था। वे अपपने आप . को वैराग्य लेने के योग्य समझ चुके थे। महाराज मेघरथ को ध्यान से उठा जान-सभी नगरवासियो ने उत्सव मनाया। देवो ने पुष्प बरसाये। दोनो रानियाँ महाराज के चरणो मे झुकी हुई थी। राजा मेघरथ ने दोनो को चरणो पर से उठाया। दोनो के नेत्र अपार हर्ष से उमड रहे थे।

× × × ×

२ |

## तीर्थंकर प्रकृति बंध की मुख्य पृष्ठिका

ससार।

असार ससार।

दु:खमय ससार।

राजा मेघरथ को किस वस्तु की कमी थी इस ससार में ? वैभव, राज्य सम्पदा, सम्पन्न परिवार, सुन्दर-निरोग-कचनमय शरीर अर्थात् क्या नही था उनके जीवन मे ?

सब कुछ था। संसार की सभी भोग्य व उपभोग्य सामग्री मेघरथ को पुण्योदय से उपलब्ध थी। परन्तु······

परन्तु राजा मेघरथ ने अपने ज्ञान-चक्षु से सब कुछ देख लिया था। ससार की विषय वासना, रागद्वेष की प्रत्येक क्रियाये उन्हे अब कडवी लग चुकी थी।

आज ना उन्हे रानियो का ससर्ग प्रिय है और न उनसे मोह ही है। रानियाँ, अब मात्र शरीर का एक चलता फिरता पुतला दिखाई दे रही है।

आज प्रातः ही उठकर राजा मेघरथ चल पड़े। ना किसी से बोलना,

ना किसी को आदेश और ना किसी को आज्ञा। राज महल से बाहर राजा मेघरथ पैदल ही चल रहे थे।

दासियो ने देखा।

राज्य कर्मचारियो ने देखा।

रानियो को भी सन्देश पहुँचा।

सब महाराज मेघरथ के पीछे चल पडे।

सभी आश्चर्यान्वित थे। रानियाँ कुछ समझ नही पा रही थी।

"क्या हो गया है महाराज को ?" सभी के दिलो मे एक प्रश्न उठकर अन्दर ही अन्दर घुट रहा था।

राजा मेघरथ ने एक उपवन मे प्रवेश किया। वहाँ नर सुर मुनियो से वेष्ठित तीर्थंकर घनरथ सिहासन पर विराजे हुये थे।

महाराज मेघरथ ने तीर्थंकर देव की तीन प्रदक्षिणाये की, उनको नमस्कार किया, बड़ी भक्ति से उनकी पूजा की और उत्तम स्तोत्रो से स्तुति की।

जिज्ञासु राजा मेघरथ ने नम्रता से झुक कर श्रावकाचार पूछा और आत्म कल्याण का मार्ग प्रदर्शित करने के लिये निवेदन किया।

तीर्थंकर घनरथ ने वैराग्य से विभूषित आत्मा को कल्याण मार्ग प्रदर्शित करते हुये अपनी दिव्य वाणी से उपदेश दिया।......

"भव्य मेघरथ !

श्रावक उस मानव को कहते है जिसमे—

श्रद्धा,

विवेक,

और

विवेक पूर्वक क्रिया करने की क्षमता हो। श्रावक वही होता है जिसके जीवन मे—

जीवन को सफल बनाने वाली नियमितताये हो ? यथा—

—श्रावकोचित अहिंसा का पालन करे।
—श्रावकोचित सत्य का पालन करे।
—श्रावकोचित अचौर्यता का पालन करे।
—श्रावकोचित ब्रह्मचर्य का पालन करे।
और
श्रावकोचित अपरिग्रह का पालन करे।

यहाँ श्रावकोचित इस लिये कहा गया है कि श्रावक एक गृहस्थ होता है और गृहस्थ को गृहस्थावस्था मे सभी सासारिक कार्य करने होते है। अतः वह पूर्ण रूप से उपरोक्त पाचो व्रतो—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करने मे असमर्थ रहता है। इसीलिये उसका जीवन एक सफल जीवन हो, पापवृत्ति मे ना लगे, और ससार की दुःखमय असारता को समझ भी सके–ऐसा सोचकर ही पूर्वानुभवी आचार्यो ने श्रावको के लिए ऐसा उपदेश दिया है। ये पाचो व्रत श्रावको के लिये अणुव्रत कहलाते है

मुनिश्वरो के लिये यही व्रत महाव्रत हो जाते है। क्योकि वे इनका पूर्णरूप से पालन करते है।

मानव जीवन एक अमूल्य जीवन है। अतः हे भव्य! उसको निरर्थक गवा देना एक ऐसी भूल है जिसे कभी सुधारना दुरुह हो जाता है।

श्रावक।

श्रावक—क्योकि ससार में उलझा हुआ एक प्राणी है। वह ससार के दुःखो से मुक्त भी होना चाहता है और ससार को छोडने में अपने आपको असमर्थ भी जानता है। इसी हेतु वह अभ्यास पूर्वक सरलता से अपना जीवन ससार-कीच से उभार सकता है।

इसको ध्यान मे रखकर श्रावक के ग्यारह अभ्यास कहे गये हैं—जिन्हे प्रतिमाये भी कहते है। यथा—

(१) दर्शन प्रतिमा—सर्व व्यसन का त्याग करके निर्मल सम्यक्-

दर्शन सहित आठ मूलगुणों का पालन करना।

(२) व्रत प्रतिमा—बारह प्रकार के व्रतों का निरतिचार पालन करना।

(३) सामायिक प्रतिमा—'प्रतिदिन' प्रातः मध्यान्ह एवं सायं निरतिचार आत्म चिन्तन करना।

(४) प्रोषध प्रतिमा—प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, को १६ पहर का, अतिचार उपवास करना।

(५) सचित त्याग प्रतिमा—कच्चे फल फूल न खाना, कच्चे जल को भी न पीना।

(६) रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा—मन, वचन, काय, से और कृत कारित, अनुमोदना से रात्रि मे हर प्रकर के आहार का त्याग करना।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा—मन, वचन, काय से स्त्री मात्र का त्याग करना।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा—मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदन पूर्वक गृह-कार्य सम्बन्धी सर्व प्रकार की क्रियाओ का त्याग करना।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमा—धन, धान्यादि दस प्रकार के वाह्य परिग्रह को त्याग कर सन्तोष धारण करना।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमा—गृहस्थाश्रम के किसी भी सांसारिक कार्य की अनुमति न देना। यहां तक कि वह यह भी नही कहता कि मेरे

लिये भोजन बनाओ।

(११) उदिष्ट त्याग प्रतिमा—वन मे, चैत्यालय मे, या मुनि सघ मे खण्ड वस्त्र धारण करते हुये आहारादिक साधुवृत्ति की क्रिया करते रहना। इस प्रतिमा के दो भेद किये है।

(१) क्षुलक—जो पीछी कमण्डलु के अतिरिक्त एक चादर और लगोट भी रखते हैं। ये अपनी शक्ति के अनुसार केश लोच या कैंची से केश कतर लेते है।

(२) ऐलक—जो मात्र एक लगोट रखते हैं। पीछी कमण्डलु तो इनके पास होता ही है। ये केश कैंची से नही कतरवाते अपितु अपने हाथो से या अन्य पवित्र व्यक्ति के हाथो से केश लोच ही करते है।

कितना सरल और सफल साधन है मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाने का। पहली प्रतिमा का अभ्यास अपनी गति से आगे बढता बढता ग्यारहवी प्रतिमा तक पहुँच जाता है।

ज्यो ही भाव अग्रिम प्रतिमा पर पहुँचे कि पीछे की प्रतिमा अपने आप पीछे रह जाती हैं। हा सम्यक दर्शन मे शुद्धता आती जाती है। भाव विशुद्ध होते जाते हैं। कलुपित भाव तिरोहित होते जाते हैं।

हे भव्य मेघरथ। तूने गृहस्थ के सभी कार्य किए हैं, पर अभी आत्म कल्याण की ओर अग्रसर नही हुआ था—आज तेरे भाव आत्म-कल्याण की ओर चले है। अतः आत्म कल्याण हेतु आत्म-तत्व का विवरण ध्यान से सुन।

मानव।

हा। मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो अपनी आत्म साधना का साधन जुटा सकता है।

# ा : जीवन रेखा

मानव ही एक ऐसा उत्कृष्ट शरीर धारी जीव है जो आत्मा से परमात्मा बनने की सारी क्रियाये करके स्व—परहित के स्रोत बहा देता है।

मानव पर्याय ही एक ऐसी पर्याय है जिसे प्राप्त करने के लिए अनुपम सुख के भोगी स्वर्ग के देव भी, लालायित रहते है ।

मानव पर्याय ही, आत्मा की एक ऐसी अनुपम पर्याय है जो अनादि काल से लगे सासारिक कलुप-कलक को सम्यक जल से धोकर पवित्रता प्राप्त कर सकती है ।

मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो न्यून ज्ञान को भी विशेष ज्ञान बनाकर आत्म ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

किन्तु ·········

किन्तु सासारिक भोग विलासता का लोलुपी बनकर यह मानव अपनी उत्कृष्ट मानव पर्याय को स्वप्नवत् बनाकर व्यर्थ नष्ट कर देता है ।

वह भूल जाता है कि मेरा ध्येय क्या है ? मै कौन हूँ ? मुझ मे और तिर्यंच मे क्या अन्तर है ?

ससार।

हां। संसार तो विनश्वर उपलब्धियां देकर आत्मा को भुल भुलैया मे डालकर भुलाता रहता है ।

ससार मे सारता जब ही है, जबकि मानव, मानव पर्याय का उत्कृष्ट लाभ, आत्म ज्ञान प्राप्त करले ।

यह परिवार।

यह भोग्य सामग्री।

यह राज पाट ।

यह सेवक ।

यह जय जय कारे।

सब एक छलावा है। धौखा है। जजाल है। आत्मा को उलझाने

वाले ताने वाने है। और मात्र पुण्य का फल है। जो विनश्वर भी है

क्या तूने यह कभी भी विचार नही किया ?

क्या तूने कभी भी इसका अनुभव नही किया ?

क्या तूने कभी भी अपने आपको फँसा हुआ नही समझा ?

क्या तूने कभी भी इन सबको पाकर घुटन सी महसूस नही की ?

की है। मै जानता हूँ कि तूने की है। और इसीलिये आज वैराग्य की ज्योति तेरे आत्म पटल पर ज्योतिर्मान हुई है।"

राजा मेघरथ।

राजा मेघरथ ने जो सुना तो उसे—जैसे अपनी खोई हुई निधि मिल गई। जैसे वह सुपुप्त अवस्था से जागृत हुआ।

मेघरथ ने विचार किया—

ओफ ! ! !

सत्यत ससार एक गहन समुद्र के समान है। यह अत्यन्त दु.सह है। विषम है। दु:ख रूपी मगरमच्छो से भरा हुआ है। जन्म, मरण, वुढापा ही इसकी विशाल भँवर है। चारो गतियाँ ही इसकी लहरे है।

—यह नि.सार है।

—अपार है।

—समस्त पापो का समूह ही इसका जल है।

—जीवो का परिभ्रमण ही इसका फल है।

—सब दु खो का यह भण्डार है।

—भव्य जीवो के लिये भयकर है।

मुझे इस ससार समुद्र को पार करना है। धर्म जहाज को अब मै उपयोग मे लाऊँगा।

झुक चुका। पर अब कदापि सासारिक निस्सारता की ओर नही झूकूँगा।

मुझे आत्म सुख प्राप्त करना है। और ससार मे सुख है ही कहा ?

प्रत्येक सांसारिक सुख के साथ दुःख का आवरण लगा हुआ है। कुछ भी तो नित्य नही है इस ससार मे ···सब विनश्वर है। क्या महल, क्या राज्य, क्या शरीर, क्या स्त्री, क्या लक्ष्मी, क्या पुत्र, और क्या सेवक।

सभी अनित्य है। फिर किसके प्रति अपना मोह करूं। किसे अपना समझूं। ये सब मेरे लिये जजीरे है—जिनके द्वारा मुझे बाध लिया गया है।

आज मै इन सब जंजीरो से छुटकारा पाकर आत्म साधना का पथ अपनाऊँगा। मैं निस्पृही होकर आत्मबल को तत्व रस से सराबोर करूंगा।

राजा मेघरथ के भाव तीर्थंकर घनरथ प्रत्यक्ष जान रहे थे।

तभी मेघरथ ने तीर्थंकर को नमस्कार किया। पास मे बैठे अपने छोटे भ्राता दृढरथ से कहने लगे···

"भैया! लो सम्हालो राजपाट, और सुख से राज्य सुख भोगो।'

"सुनिए···छोटे भ्राता ने नम्रता से उत्तर दिया।

··· कहो! कहो!

··· आप इस राज्य को क्यो त्याग रहे है?

··· क्यो कि यह छलावा है, मात्र धोखा है और दुःख का सागर है।

" ··धन्य! धन्य है आपको। किन्तु आप तो सदैव हित का ध्यान रखते आए है। फिर ······"

"··· हां! हा! बोलो, बोलो।"

"अजी! भाई साहब, जिसे आप छलावा, मात्र धोखा, दुःख का सागर समझते है—क्या वही मेरे लिए सुख है?"

"अरे!!!···"

"मै भी समझ चुका हूँ भ्रात, कि यह दुःख का पिण्ड है। भला

जो आत्म साधना मे बाधक हो वह मेरे लिए कैसे हितकर हो सकता है। ... मैं भी तो आत्म कल्याण के पथ पर चलने का इच्छुक हूँ। यह राजपाट अपने पुत्र को दीजिए।

मेघरथ ने अपने पुत्र मेघनाथ को राज्य देकर, अपने भाई सहित दीक्षा ग्रहण की।

अब मेघरथ मुनि थे।

दिगम्बर।

निर्ग्रन्थ।

और आत्म साधना मे लीन।

आज विषय-वासना उनसे दूर जा चुकी थी। मोह मुख मोड़ चुका था। राग द्वेष दामन छोड़ चुका था। आज मुनि मेघरथ आत्म-धर्म-जहाज पर आरूढ हो चुके थे।

वन, उपवन, गुफा, पर्वत, आदि एकान्त व भयकर स्थानो पर तप करने मे लीन मुनि मेघरथ अशुभ कर्मों की कडिया काट रहे थे।

इन्द्रियो की दासता से वे छुटकारा पा चुके थे। आज वे मुनि अपनी आत्म-विशुद्धि की ओर अग्रसर हो रहे थे।

तीर्थंकर नाम कर्म की रचना—वे अपनी उत्कृष्ट सोलह कारण भावनाओ से निकाक्षित रूप होकर कर रहे थे। सोलह कारण भावना मे वे आत्म परिणमन का रमन कर रहे थे। यथा:—

(१) दर्शनविशुद्धि— आठ अंग सहित, पच्चीस दोष रहित शुद्ध सम्यक्दर्शन का बारबार चिन्तवन करना, अपनाना।

(२) विनय सम्पन्नता— सम्यक्ज्ञानादि गुणो तथा उनके धारको का आदर करना। कषाय रहित परिणाम रखना।

(३) शीलव्रतेश्वनतिचार— व्रत तथा शील से युक्त चरित्र मे निर्दोषता रखना।

(४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग— निरन्तन आत्म तत्वो का अध्ययन करना ।

(५) सवेग— ससार के दुख से निरन्तर दूर रहना, आत्म सयम पूर्वक चिन्तन करना ।

(६) शक्तितस्त्याग— योग्यपात्रो को अभय, ज्ञान, आदि दान देना ।

(७) शक्तितस्तप—शक्ति—अनुकूल तप करना ।

(८) साधुसमाधि— किसी समय वाह्य और आभ्यन्तर कारणो से मुनिसंघ के तपश्चरण मे विघ्न उपस्थित होने पर मुनिसघ की यथाविधि रक्षा करना ।

(९) वैयावृत्यकरण— निर्दोष विधि से साधु, गुणी प्राणियो के दुख, पीडा, वेदना दूरक रना ।

(१०) अर्हद् भक्ति— अन्तर्मु ख होकर अरहन्त देव के गुणो का स्मरण करते हुए भावो की शुद्धता पूर्वक उनके प्रति अनुराग रखना ।

(११) आचार्य भक्ति— आचार्य मुनिवर के महान गुणों, उनकी तपश्चर्या, आदि का शुद्ध भाव पूर्वक मनन करना, उनमे अनुराग करना ।

(१२) वहुश्रुतभक्ति— मन, वचन, काय पूर्वक विशुद्ध भाव से आगमका आदर करना, अनुराग करना ।

(१३) प्रवचनभक्ति— आगमोक्त प्रवचन का विशुद्ध भाव से मनन करना, उनके प्रति अनुराग करना ।

(१४) आवश्यकापरिहाणि— यथाविधि वताए गए छह आवश्यक मे यथा समय प्रवृत होना ।

(१५) मार्ग प्रभावना— ज्ञान से, तप से, जिनेन्द्र देव की पूजा से अथवा अन्य किसी आगमानुकूल

उपाय से धर्म का प्रकाश फैलाना ।

(१६) प्रवचन वात्सल्य— गो-वत्स-वत्, धर्मात्मा, व धर्म से स्वाभाविक प्रेम करना ।

मुनिराज मेघरथ ने उक्त सोलह कारण भावनाओ का विशुद्धता के साथ चिन्तन किया । अवधारण किया ।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार उक्त सोलह कारण भावना का चिन्तन मनन, अपनाने से तीर्थ कर नाम कर्म का बन्ध होता है । जो मुनिराज मेघरथ ने किया ।

इस तरह मेघरथ मुनिराज ने घोर तपश्चरण किया । अनेक देशो मे विहार किया और धर्मोपदेश देकर अज्ञानियो को सतपथ दिखाया ।

अनन्त धीर वीर मुनिराज मेघरथ ने नभस्तिलक नामक पर्वत पर एक माह का प्रायोमगमन सन्यास धारण किया और शान्त परि-णामो से शरीर छोडकर अहमिन्द्र पद ( सर्वोच्चिय स्वर्ग मे ) प्राप्त किया ।

× × × ×

३ |

## तीर्थंकर शान्तिनाथ का गर्भावतरण

भारत क्षेत्र का कुरुजागल देश ।

जो सब प्रकार के धन-धान्यो से सम्पन्न है और आर्य क्षेत्र के ठीक मध्य मे है ।

कुरु जागल देश के मध्य मे वीरो की, ऋषियो की, रणधीरो की, और कर्मवीरो की महान् स्वर्ग-सरीखी नगरी है—जिसका नाम है 'हस्तिनापुर ।"

## : जीवन रेखा

आकाश को छूने वाले भवन, सर्व साधन सम्पन्न धार्मिक वृत्ति का समाज, फल फूलों से भरे पूरे उद्यान, सब प्रकार के धान्य से लह-लहाते विशाल खेत, और पास ही सरसराती मीठे, स्वच्छ जल भरी लहराती इठलाती नदियाँ। सब कुछ है इस अनुपम नगरी मे।

स्वर्गोपम इस हस्तिनापुर मे ब्रह्म स्थान के उत्तरी भूभाग मे राजमन्दिर है। जिसके चारो ओर विशाल और भव्य देदीप्यमान सुन्दर महल बने हुये है।

इस पवित्र और विशाल हस्तिनापुर नगर मे काश्यपगोत्री महान् राजा अजितसेन के पुत्र विश्वसेन राज्य करते है। जिनमे सभी प्रकार के राज्यपदीय आदर्शमयी गुण है।

गधार देश की गाधार नगर के राजा अजितंजय की सर्वगुण सम्पन्न, रूप सौन्दर्य की देवी 'ऐरा' नाम की सुपुत्री राजा विश्व सेन की रानी है।

राजा विश्वसेन और रानी ऐरा दोनो ही महान पुण्य लेकर इस भूपर जन्मे थैं। तभी तो देव-तुल्य भोग्य सामग्री इन्हे यहाँ उपलब्ध है। राजा विश्वसेन तार्किक, सिद्धान्तिक, नैमेत्तिक, न्यायिक व राज-नैतिक सभी विद्याओं के मर्मज्ञ है।

राज्य कार्य से निवृत्त होकर राजा विश्वसेन प्रायः रानी ऐरा के साथ सिद्धान्तिक चर्चाये किया करते हैं।

"स्वामिन ·········।

"कहो प्रिय।

···आज मेरा मन अत्यन्त प्रश्न्न है। ऐसा लग रहा है ······ऐसा लग रहा है···जैसे मुझे अचिन्त्य अनुपम निधि मिलने वाली है।" ······ओह ! क्यो नही। क्यो नही ? जब मन स्वतः ही प्रसन्नता के सागर से उमग रहा है तो प्रत्यक्ष सिद्ध है कि अवश्य कोई शुभ होने वाला है।"

भाद्रपद महिने का कृष्ण पक्ष था। और सप्तमी तिथि के साथ

भरणी नक्षत्र था। रात्री का अभी चतुर्थ भाग प्रारम्भ ही हुआ था अर्थात् अर्धरात्री समाप्त हो चुकी थी और प्रभात होने मे अभी चार घडी अवशेष थी।

ऐरा रानी, निद्रा देवी की गोद मे मग्न हो रही थी कि जैसे कुछ नेत्र की पलके खुली और रानी ने मगल दायक स्थान देखे।

क्रमश. रानी ने सोलह स्वप्न देखे, यथा—

(१) मद भरा, गर्जना करता हुआ इन्द्र का ऐरावत हाथी।

(२) स्वच्छ व श्वेत कमल जैसे वर्ण का सुन्दर सुडोल एक बैल।

(३) चान्दनी जैसा वर्ण एवं लाल रग के लहराते हुए वालो से भरा एक सिह।

(४) कमल पुष्प के आसन पर विराजित तथा देवो के हाथी द्वारा स्वर्ण कलशो द्वारा अभिशेषित लक्ष्मी।

(५) आनन्दमयी दो पुष्प मालाये।

(६) उत्कृष्ट चॉदनी से युक्त और पूर्ण तारो से वेष्ठित पूर्ण चन्द्रमा।

(७) उदयाचल पर्वत से उदित होते हुए अन्धकार को विनष्ट करने वाला सूर्य।

(८) कमल पत्र से ढके हुए दो स्वर्ण कलश।

(९) फूले हुये कुमुद और कमलो से सुशोभित तालाव मे क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ।

(१०) स्वच्छ नीर से भरा सुन्दर तालाव।

(११) लहरो से आल्हादित विशाल समुद्र।

(१२) स्वर्ण मय रत्नो से जड़ित सुन्दर व भव्य सिहासन।

(१३) स्वर्ग का महा रमणीक विमान।

(१४) पृथ्वी को भेद कर ऊपर आता हुआ नागेन्द्र का भव्य भवन।

(१५) चमकती हुई किरणो को प्रसारित करने वाली रत्नो

की राशि।

(१६) प्रकाशमान निर्धूम अग्नि।

अन्त मे अर्ध निद्रा के बीच जिसे कुछ ज्ञान प्राप्त हो रहा है था जिसके पवित्र मुख से शुद्ध सुगन्ध प्रकट हो रही है—

ऐसी रानी ऐरा ने स्वप्न देखने के पश्चात अपने मुख मे प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। उसी समय।

हाँ, हाँ, ठीक उसी समय राजा मेघरथ का जीव स्वर्ग से चय कर रानी ऐरा के पवित्र गर्भ मे आकर उस तरह अवतीर्ण हो गया जैसे शुक्ति मे मोती रूप परिणमन करने वाली पानी की बूद अवतीर्ण होती है।

स्वप्न !

हाँ ! स्वप्न प्राणी के लिये भावी शुभाशुभ का सूचक एक सकेत होता है। प्राणी के जिस वक्त जैसा भी शुभ या अशुभ का उदय होता है तो उसे नैमित्तिक स्वप्न दिखाई दिया करते है।

स्वप्न !

हाँ। स्वप्न वही सत्य होते है जो अर्धरात्री पश्चात् प्रभात के पूर्व दिखाई दे। तिथि के अनुसार कृष्ण पक्ष की सप्तमी एव शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के स्वप्न भी प्रायः सत्य होते है।

स्वप्न !

हाँ ! स्वप्न यदि अशुद्ध दिखाई दे, तो व्याकुल नही होना चाहिए। उसके फल को विचारते हये उसका निराकरण करने का प्रत्यत्न करना चाहिये।

स्वप्न !

हाँ ! स्वप्न की वात—विश्वासपात्र एवं स्वप्न विशेषज्ञ को ही कहनी चाहिए।

तो इस प्रकार मगल सूचक स्वप्न देखने के पश्चात् रानी ऐरा का रोम -२ पुलकित हो उठा। तभी······



तभी अन्तिम पहर की मधुर भेरी वज उठी। उस मधुर व कर्ण-प्रिय भेरी को सुनकर रानी ऐरा का मुख कमल, कमलिनी के समान खिल उठा।

प्रसन्न वदन, पुलकित गात, उमंग भरे मन के साथ रानी शय्या-गृह से उठी।

स्वर्ग की देवियाँ—जो मगल स्वागत को प्रतीक्षा मे खड़ी थी ......... आगे वढ़ी और ऐरा रानी को झुक कर नमस्कार किया। पश्चात् रानी ने मगल स्नान किया।

देवियो ने प्रसन्न मन से अपने आपको सौभाग्य से पूर्ण मान कर रानी ऐरा को वस्त्रा-भूषण पहनाये।

वस्त्राभूषण को पहिन और सुगन्धित उप साधनो से वेष्ठित रानी सुन्दर कल्प लता की भाँति राज्य सभा की ओर चल पड़ी।

राज्य सभा मे।

राज्य सभा मे राजा विश्वसैन रत्नमयी......

सिहासन पर विराजमान थे तभी......

जिस प्रकार रात्रि मे चन्द्रमा की रेखा प्रवेश करती है उसी प्रकार अपनी मधुर मुस्कान के साथ रानी ऐरा ने राज्य सभा मे प्रवेश किया।

राजा विश्वसेन ने रानी ऐरा को देखा। आज ऐरा रानी का मुख कमल प्रफुल्लित हो रहा था। राजा ने रानी को बड़े प्यार से अपने सिहासन के अर्धभाग मे विठा लिया। तभी एक मधुर वीणा के से सुरीले तार वज उठे ...

"स्वामिन।"

... क्या है रानी। आज तो अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दे रही हो।

... हा प्रभो ! मै आप से कुछ समाधान चाहती हूँ।

... अवश्य ! अवश्य ! समाधान अवश्य मिलेगा। वोलो किस प्रकार का समाधान चाहती हो ?

"'स्वामिन् ! आज मैं रात्रि के अन्तिम पहर मे बहुत ही अच्छे अच्छे स्वप्न देख चुकी हूँ ..." और रानी ऐरा ने १६ स्वप्न जो उसे दिखाई दिए थे सभी को राजा से कहा। स्वप्न सुनकर राजा पुलकित हो उठा। अनायास ही उसके मुख से निकल पड़ा......

धन्य है ! धन्य है ! !

... क्या धन्य है स्वामिन्। मेरा समाधान हुआ नही ।" रानी ने राजा के प्रसन्न मुख को देखती हुई कहा।

राजा विश्वसेन अवधिज्ञानी थे। नैमित्तिक सिद्धान्त के पारगामी थे। उन्होने रानी को बताया ...

... प्रिय ! स्वप्न मे ऐरावत हाथी देखने से तेरे उत्तम पुत्र होगा।

... उत्तम बैल देखने से—वह समस्त लोक में ज्येष्ठ ( बड़ा ) होगा।

... सिह देखने से — वह अनन्त बल से युक्त होगा।

... मालाओं के देखने से—वह समीचीन धर्म ( तीर्थ ) का चलाने वाला होगा।

... अभिषित लक्ष्मी देखने से—उसे देवो द्वारा सुमेरू पर्वत पर अभिषेक प्राप्त होगा।

... पूर्ण चन्द्रमा देखने से—विश्व के प्राणियो को आनन्द देने वाला होगा।

... सूर्य देखने से—देदीप्यमान प्रभा का धारक होगा ।

... दो कलश देखने से — अनेक निधियों को प्राप्त होगा ।

... युगल मछलियो के देखने से — अत्यन्त सुखी होगा।

... सरोवर (तालाब) देखने से —वह अनेक शुभ लक्षणों का स्वामी होगा।

... समुद्र देखने से वह — केवल ज्ञान का धारी होगा।

... सिंहासन देखने से—जगत का गुरू होकर साम्राज्य को प्राप्त होगा।

··· देवो का विभान देखने से—वह स्वर्ग से चयकर आएगा।

··· नागेन्द्र का भवन देखने से—वह अवधि ज्ञान का धारी होगा।

··· किरणो को प्रसारित करने वाली रत्न राशि को देखने से—वह गुणो की खान होगा।

··· निर्धूम अग्नि को देखने से—वह कर्म मुक्त हो, मोक्ष लक्ष्मी का स्वामी होगा।

और रानी ······"

"हा ! हा ! स्वामिन्, आगे और कहिए ··· मैं कितनी भाग्यवान हूँ ··· कहिए ··· कहिए ··· ·"

"और रानी, अन्त मे जो तुमने अपने मुख मे प्रवेश करते हुए हाथी को देखा है ना ··· ?"

"हा ! हा ! प्रभो, मैंने देखा है ।"

"तो बस उपरोक्त गुणो का धारक महान पुण्यात्मा जीव तेरे गर्भ मे आ गया है।"

"अहो ·········"

रानी का रोम, रोम उमग से पुलकित हो उठा था।

उधर स्वर्ग के देवो ने (जो गर्भावतरण के ६ माह पूर्व से ही रत्नवृष्टि कर रहे थे) गर्भ कल्याण महोत्सव मनाया। रानी ऐरा की देव और देवियो ने स्तुति की, पूजा की।

× × × ×

४ |

## तीर्थंकर शान्ति नाथ का

### जन्म कल्याणक महोत्सव—

महान् प्रभाव !

जैसा जीव गर्भ मे आता है, उसी प्रकार कार्य उस परिवार मे

प्रायः घटित होते रहते है। यह एक अनुभविक तथ्य है।

सत्य भी है।

क्यो कि रानी ऐरा के गर्भ मे इस महान आत्मा के आने से पूर्व ही देव देवियां सेवा हेतु आ पहुँचे। ६ माह पूर्व ही रत्न वृष्टि होने लगी। और अब ......

जबकि वह महान आत्मा गर्भ मे अवतीर्ण हो चुकी है तो हर प्रकार के मगल कार्य होने लगे है। रानी ऐरा का शरीर अब और दमकने लगा है। उसे अन्य साधारण नारियो की तरह गर्भ वेदना भी नही हो रही।

प्रत्येक प्रकार से मन बहलाने के लिए देविया विभिन्न प्रकार के सारगर्भित प्रश्न रानी ऐरा से पूछती रहती हैं और महान् पुण्यात्मा जीव के प्रभाव से रानी आश्चर्यकारी सैद्धान्तिक उत्तर उन्हे देती रहती है। यथा देवियां प्रश्न पूछती और ऐरा रानी उत्तर देती—

—"कः पंजर मध्यास्ते ?" पिंजरे मे कौन रहता है ?

—"शुक पंजर मध्यास्ते। —पिंजरे में तोता रहता है।

—"कः परुषनिस्वनः?—कठोरभाषी कौन है ?

—"काकः परूष निस्वनः ?—कौआ कठोरभाषी है।

—"क प्रतिष्ठा जीवानाम् ?—जीवों का आधार क्या है ?

—"लोक प्रतिष्ठा जीवानाम्।—जीवो का आधार लोक है।

इनके अतिरिक्त एक देवी ने पूछा-हे, माता ! प्रथम से नौ अंक तक की गणना के अनुसार वताइए जीव के पतन के क्या क्या कारण हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर रानी ऐरा, वड़ी प्रसन्नता के साथ देती—

एक — मिथ्यात्व।

दो — राग और द्वेष।

तीन—मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्या चारित्र।

चार—क्रोध, मान, माया लोभ।

पांच—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह।

छह—कुदेव, कुगुरू, कुशास्त्र, और तीन इनके सेवक।

सात—जूआ, मास, शराव (मदिरा) वैश्या, शिकार, चोरी परस्त्री रमरण।

आठ—वल का घमण्ड, विद्या का घमण्ड, तप का घमण्ड, जाति का घमण्ड, कुल का घमण्ड, प्रभुता का घमण्ड, रूप का घमण्ड, और धन का घमण्ड।

नौ— परिहास, रति, अरत्ति, शोक, भय, ग्लानि, पुरुष रमरणेच्छा, स्त्री रमरणेच्छा, नपुन्सक रमरणेच्छा :

इस प्रकार हे देवी, उपरोक्त सभी सकेत जीव के पतन के काररण है। अर्थात् जो भी इन्हे अपनाएगा उसका निश्चय से पतन होता ही है।

तभी दूसरी देवी ने प्रश्न किया—हे माता पुनः प्रथम से नौ अंक की गरणना के अनुसार जीव के उत्थान के क्या क्या काररण है ?

ऐरा देवी ने इसका भी उत्तर मधुर मुस्कान के साथ दिया—

एक ··· आत्म विश्वास

दो ··· निश्चय और व्यवहार द्वारा तत्व निर्णय।

तीन ··· सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चरित्र।

चार ··· प्रथमानुयोग, चररणानुयोग, कररणानुयोग, और द्रव्यानुयोग—आगम का अध्ययन।

पाच ··· अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इनका पालन करना।

छह ··· देवपूजा, गुरू उपासना स्वाध्याय सयम तप और दान।

सात ··· चार शिक्षाव्रत—सामायिक, प्रोपधोपवास, भोगोपभोग परिरणाम और अतिथि सविभाग। तथा तीन गुरणव्रत्त-दिग्व्रत्त, देश व्रत्त, अनर्थ दण्ड व्रत्त इन सातो का यथा विधिपालन करना।

आठ…ज्ञानवरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय—इन आठो करमो का स्वरूप जानकर इनसे मुक्त होने का उपाय करना।

नौ…सात तत्व यथा—जीव, अजीव, आश्रव बध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तथा पुण्य, व पाप—इन नौ पदार्थो का यथा विधि स्वरूप समझकर श्रद्धान मे लाना।

इन प्रश्नोत्तर के अतिरिक्त भी विभिन्न प्रकार के हाव-भाव, मंगल गीत, मधुर नृत्य आदि के द्वारा देवियाँ माता ऐरा का मन वहलाने मे लगी रहती।

नौ माह कब पूर्ण हो गये इसका भान तक भी नही रहा।

ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी।

याम्य योग।

और—

प्रातः काल की मंगल वेला।

जिस प्रकार घने अन्धकार को चीर कर सहस्त्र किरणो को प्रसारित करता हुआ प्राची मे सूर्य उदय होता हे— उसी प्रकार……

महारानी ऐरा के गर्भ से आज इस मगल वेला मे पुत्र ने जन्म लिया।

पुत्र ने जन्म लिया।

इस महापुनीत अवसर का भान स्वर्ग के इन्द्र को भी हो गया। ज्यो ही उसका सिहासन हिला—वाद्य विना वजाये ही वजने लगे, तीनो लोको मे आनन्द की लहर छा गई तो इन्द्र ने अवधिज्ञान से जान लिया कि रानी ऐरा की पवित्र कुक्षी से तीर्थंकर शान्तिनाथ ने जन्म ले लिया है।

इधर हस्तिनापुर नगर मे राजा विश्वसेन अपनी प्रजा के साथ महान् उत्सव मना रहे है।

उधर स्वर्ग मे इन्द्र ने शंखनाद, भेरी नाद, सिहनाद और घंटानाद से चारो निकाय के देवो को तीर्थंकर शान्तिनाथ के जन्म की सूचना दी गई।

इन्द्र चतुर्निकाय देवो के साथ अपनी इन्द्राणी सहित ऐरावत हाथी पर आरूढ हो तीर्थंकर शान्तिनाथ का जन्म महोत्सव मनाने हस्तिनापुर आये।

आज हस्तिनापुर की साज सज्जा स्वर्ग के कुवेर ने आकर की। तोरण, वन्दनवार ध्वजा, आदि से हस्तिनापुर आनन्दविभोर हो रहा था।

जगह जगह देवागनायें मगल गान कर रही थी। विभिन्न प्रकार के मधुर वाद्य की ध्वनियाँ गूंज रही थी। चारो ओर जयजय कार हो रहा था।

विशाल और स्वर्गीय वस्त्राभूपणो से सुसज्जित ऐरावत हाथी—हस्तिनापुर मे रानी ऐरा के प्रसव-भवन के समीप आकर ठहरा।

आनन्द-मोद से भरी, तीर्थंकर-दर्शन की उत्कृष्ठ-इच्छा से वलवती इन्द्राणी ने महारानी ऐरा के प्रसव भवन मे प्रवेश किया, जहाँ देवागनाये—माता-प्रसूता की सेवा मे तत्पर थी।

रानी ऐरा, और समीप मे लेटे—सुडौल, सुन्दन, प्रसन्न वदन, कुसमित प्रफुल्ल-सुमन सा कोमल—वालक, दोनो प्रसव-शय्या पर प्रमुदित हो रहे थे।

मा की ममता और वात्सल्य मे अन्तर न आवे, यही सोच इन्द्राणी ने मायामयी वैसा ही वालक रानी ऐरा की गोद मेस मपर्ण किया और तीर्थंकर-वालक को गोद मे उठा, अक से लगा, वाहर ले आई।

ऐरावत हाथी पर रत्न-मणियो से निर्मित सिंहासन पर इन्द्र देव को—इन्द्राणी ने "जिन—वालक' को वडे प्रेम से सौंप दिया।

इन्द्र ने अपने आपको महान् धन्य मानकर हर्ष भरे जय—नाद के

साथ 'जिन—बालक' को अपने दोनों हाथों में ले कर सर्वोच्च स्थान पर विराजमान किया।

जयनाद गूंज उठी। घंटे, घड़ियाल, मृदंग, ताल, वीणा, एवं अन्य कई प्रकार के वाद्य-वृन्द बज उठे।

ऐरावत—'जिन बालक' को लेकर स्वर्ग के इन्द्र इन्द्राणी एवं देव देवांगनाओं के साथ आकाश मार्ग से सुमेरू पर्वत की ओर ले चला।

सुमेरू पर्वत के मस्तक पर पाण्डुशिला पर पूर्व की ओर मुख कर 'जिन बालक' को रत्नमयी सिंहासन पर विराज मान किया और क्षीरसागर के पवित्र निर्मल जल से रत्नमयी १००८ कलशों द्वारा अभिषेक किया।

जिन-बालक, यद्यपि स्वयं ही सुन्दर थे, उत्तमोत्तम आभूषणों में से एक उत्तम आभूषण थे, तथापि इन्द्र ने केवल आचार का पालन करने के लिये अपने साथ लाये हुये आभूषणों से विभूषित किया।

इन्द्राणी ने सब प्रकार के शृंगार जिन-बालक के किये।

शान्ति के पुंज, मृग चिन्ह से विभूषित, शान्तिदाता, ऐसे बालक-जिन का यही पर इन्द्र ने 'शांतिनाथ' नाम रखा।

इन्द्र और इन्द्राणी ने विभूषित बालक को जी भर के देखा। ऐसा अनुपम सौन्दर्य भला कहाँ? जिसमे से पवित्रता, और महानता का स्रोत उमड़ रहा हो—ऐसा रूप कहाँ?

आनन्द मग्न हो इन्द्र-इन्द्राणी ने ताण्डव नृत्य किया। सारा आकाश नृत्य कर उठा। कलियाँ खिल उठी। वन उपवन महक उठा। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द।

शान्तिनाथ—बालक को पुनः ऐरावत पर विराजमान कर वापिस हस्तिनापुर लाये। माता ऐरा की बगल मे लाकर बालक को लेटा दिया। माया मयी बालक लुप्त हुआ।

इन्द्र और इन्द्राणी ने माता-पिता की पूजा की। स्तुति की।

और देवांगना ओको माता व वालक की सेवा हेतु छोड़ कर अपने-अपने स्थान को प्रयाण किया ।

वालक शान्तिनाथ–दौज के चन्द्रमा की भाति वढने लगे ।

छोटे छोटे सुडौल कोमल पावो मे वन्धी पायल की रून झुन ।

छोटे छोटे सुडोल सुन्दर हाथो मे पहने हुये ककरण ।

छोटी सी, पर गठीली कमर मे वन्धी करधनी ।

एवं और भी अन्य आभूपरणो की झन्कार अव राजमहल मे वजने लगी । गिरना, उठना, रुठना, मुस्कराना, हठ, आदि वाल-क्रिड़ाये—वालक शान्तिनाध की अनुपम और आनन्द दायक थी ।

देवागनाओ के हाथो हाथ रहने वाले, पिता ऐरा को प्रफुल्लित करने वाले पिता विश्वसैन के राज दुलारे—वालक शान्तिनाथ—कव वड़े होगये —किसी को भान नही हुआ ।

× × × ×

# ५ |

## छहखण्ड साम्राज्यपति चक्रवर्त्ती शान्तिनाथ

**शैशव से युवक ?**

नैत्रो को आनन्द दायक, मनको प्रफुल्लित करने वाले वालक शान्तिनाथ ने शारीरिक, मानसिक, वौद्धिक, वृद्धि के साथ युवावस्था की ओर कदम वढाया ।

—जैसे समुद्र मे महामरिण वढती है ।

—जैसे मुनियो मे गुरण वढते है ।

—जैसे वालशशि वृद्धि को प्राप्त करता है । और जैसे प्रकट अभ्युदय मे हर्ष वढता है—

उसी प्रकार शिशु-शान्तिनाथ वृद्धि के साथ युवा हुआ ।

चन्द्रकान्ति सा दीप्त मुख ।

कचन-कान्ति सा शरीर ।

गठीला, सुडौल सुन्दर आकार।

प्रफुल्लित, मधुर, मन प्रमोदनी मुस्कान। इनके साथ साथ विचार, विवेक, कार्य क्षमता, वल—आदि से सुशोभित युवा शान्तिनाथ कामदेव कहलाने लगे। एक दिन !

"आपसे आज एक मगल निवेन करना चाहती हूँ।"

—महारानी ऐरा ने प्रसन्न होकर प्राणेश विश्वसेन से कहा। राजा विश्वसेन ने महारानी ऐरा के मन की वात समझ तो ली थी फिर भी प्रमोद को आगे वढाते हुए राजा ने कहा—" कहो ! कहो !

"अपने शान्तिनाथ को देखा ?

"प्रत्येक दिन, प्रत्येक पल, और प्रत्येक क्षण देखता हूँ।"

"क्या देखा है आपने उसमे ?"

"भोली महारानी, देखता क्या। आज शान्तिनाथ युवा हो गया है। राज्य—कार्य सम्हालने के योग्य हो गया है और······"

"और विवाह के योग्य भी हो गया है।" ··· वीच मे ही महारानी ऐरा ने मुस्कराते हुए कहा।

—"हां ! हा ! यह मै भी सोच चुका हूँ। कई देशों से राजा महाराजाओ ने अपनी कन्याओ के लिए भी निवेदन—सन्देश भेजा है।"

—"तव विलम्ब किस वात का है ? अव तो हमारा राजकुमार पच्चीस हजारवे वर्ष मे कदम रख रहा है।"

"अवश्य ! अवश्य रख रहा है। ··· मै शीघ्र ही यह मगल कार्य कर रहा हूँ। अच्छा यही वात थी या और कुछ······"

"यह क्या कम वात है। एक मा की जो ममता अपने युवा पुत्र के प्रति होती है वही मा की सच्ची निधि होती है और प्रत्येक मा चाहती है कि उसके आंगन मे भी नव-नवेली दुलहन की पायल मुखरित होकर झनके।"

"तुम्हारी प्रत्येक इच्छा पूर्ण होगी। शान्तिनाथ तो महान् पुत्र

है। एक क्या अनेको पायल की झन्कार तुम्हे सुनने को मिलेगी ।"

रानी का मन प्रमुदित हो आह्लादित हो उठा ।

··· और इस प्रकार राजा विश्वसैन ने युवराज शान्तिनाथ का विवाह अन्यन्य धूमधाम से किया ।

मन्त्री आदि से परामर्श कर एक दिन विशाल राज्य सभा के बीच राजकुमार-शान्तिनाथ का राज्यभिषेक किया। । राजा विश्वसेन राज्य सम्पदा की डोर शान्तिनाथ के कुशल हाथो मे देकर निश्चित हुए ।

पुण्य की महिमा ।

हा, हा ! पुण्य की महिमा वडी विचित्र है। भगवान शान्तिनाथ अपने पिछले ग्यारह भवो से निरन्तर महान् पुण्य का सचय करते आए है। पिछले ग्यारह भवो (जन्मो) मे भी शान्तिनाथ ने जीवन मे अन्यन्य निधिया उपलव्ध की थी। उन महान् निधियो के वीच भी इन्होने परिणामो को सवारा रखा था। पुण्य के फल से कभी भी इन्होने अपने आपको मोह, राग और विलास मे नही रगा था।

आज राज्य सुख भोगते हुये शान्तिनाथ के जीवन का आधा भाग समाप्त हो रहा था। अर्थात् आयु का पूर्वार्व समाप्त हो चुका था और उत्तरार्ध प्रारम्भ हो रहा था।

योग्य शासक मे जो भी विशेषताये होनी चाहिए थी—वे सभी शान्तिनाथ भगवान मे थी। वीर धीर, विचारक, योद्धा, सुधारक, सभी गुणो की वाहुल्यता उनमे थी ।

महान् पुण्योदय से आज भगवान शान्तिनाथ ने चौदह रत्न और नौ निधियाँ उपलव्ध की ।

चौदह रत्नो मे से······चक्र, छत्र, तलवार और दण्ड की उपलव्धि तो आयुधशाला मे हुई। भकिरणी, चर्म, और चूडामणि की उपलव्धि—श्री गृह मे हुई। पुरोहित, रथपति, सेनापति और। ग्रहपति की उपलव्धि हस्तिनापुर मे हुई। एव शेप कन्या, गज तथा अश्व की

उपलब्धि विजयार्ध पर्वत पर हुई।

इसी प्रकार देवोपुनीत नव-निधियों की उपलब्धि भी आपको सागर एवं नदी के संगम पर हुई।

आज शान्तिनाथ 'चक्रवर्त्ती' पद से विभूषित हो रहे थे। भारत क्षेत्र के छहों खण्ड मे आज इन्ही की जय कार गूंज रही थी।

छहोखण्डों के वत्तीस हजार मुकुट-वद्ध राजा महाराज शासको ने सम्राट चक्रवर्त्ती शान्तिनाथ की आधीनता स्वीकार करली थी।

कई महान राजाओ ने अपनी अपनी गुणवती, रूपवती कन्याओं को चक्रवर्त्ती शान्तिनाथ को समर्पित किया था।

अटूट वैभव, अटूट सम्पत्ति और महान् परिवार से आज शान्ति-नाथ वैष्ठित हो रहे थे।

पौराणिक तथ्यो के अनुसार आप के छियान्नवे हजार रानियाँ थी। प्रत्येक की कई दासियाँ कई सेवक, और रथ आदि भी कई थे।

राग, रग, धूमधाम, राज्य कार्य आदि मे भगवान शान्तिनाथ के जीवन का तीन चौथाई भाग का समापन हो रहा था।

पौराणिक तथ्यों के आधार पर आपके जीवन के पिच्चेतर हजार वर्ष व्यतीत हो रहे थे।

सासारिक भोग विलास के इस विगत समय मे क्या नही भोग्य और उपभोग्य सामग्री उपलब्व हुई? भला छहखण्डाधिपति, सम्राट चक्रवर्त्ती और उसकी सम्पदा।······फीकी थी। इन्द्र की सम्पदा भी इसके आगे। स्वर्ग! स्वर्ग! स्वर्ग!

प्रत्येक प्राणी चाहता है मुझे स्वर्ग मिले। मैं भी स्वर्ग का देव बनूं। मेरे भी स्वर्गोपम सामग्री हो। और फिर निश्चिन्त रहूँ।

निश्चिन्त!!!

स्वर्ग का वैभव पाकर भी निश्चिन्तता हो सकती है? कदापि नही।

कहा जाता है कि स्वर्ग के देवो की आयु जब मात्र छह माह

रह जाती है तो उनके गले में पड़ी मन्दार पुष्प की माला स्वयमेव मुर्झा जाती है। और तव"""तव स्वर्ग का देव—जो विषयान्ध है व्याकुल हो तड़प उठता है कि 'हाय, अव मेरा स्वर्ग का पद मुझ से, मेरी मृत्यु द्वारा छीना जा रहा है—और अपने परिणामों को विगाड बैठता है।

तथा जो देव, मात्र मनुष्य-पद के अभिलापी हैं—वे यह चाहते है कि कव आयु पूरी हो और कव मैं भी मनुष्य वनूँ।

क्या रखा है स्वर्ग मे ?

जैसा सुख, जैसी उपलब्धि, जैसी पवित्र विचार-धारायें, जैसी वैराग्य विभूपित सामग्री यहाँ—अर्थात् मनुष्य भव मे है—भला वह कहाँ है स्वर्ग मे ? आज स्वर्ग के देव भी चक्रवर्ती सम्राट, तीर्थंकर शान्तिनाथ के चरणो मे आ आ कर झुक रहे है। स्तुति कर कर के, गुणानुवाद गा गा कर के वे देव अपने आपको धन्य मान्य रहे हैं।

क्या कभी यह भी सुना है कि स्वर्ग मे जाकर किसी भी मनुष्य ने स्वर्ग के देवो की स्तुति की हो, गुणानुवाद गाया हो, या उनके चरण स्पर्श किये हो। ऐसा हुआ ही नही।

तव क्यो यह मानव स्वर्ग, स्वर्ग—चिल्लाता है। मनुष्य जन्म पाकर ही क्यो नही इसे सफल वना लेता है। जो मानव यह उत्कृष्ट-मनुष्य भव पाकर भी मनुष्य जन्म की सार्थकता नही समझता है, वह अज्ञानी है अज्ञानी।

यदि मानव अपनी मानवता के चरम लक्ष्य के साथ चलता है, यदि मानव अपने परिणामो को पवित्र वनाए रखने मे सजग है, यदि मानव प्रत्येक आत्मा को अपने समान समझता है, यदि मानव पाप, कपाय, वृत्तियो के कलक से सुरक्षित रहता है तो स्वर्ग की विभूतियाँ तो उसके चरणो मे आकर लेटी फिरती है।

आज पुण्य की अतुल-राशियाँ—सम्राट शान्तिनाथ के चरणों मे विखरी पड़ी है। पुण्य आज अपना प्रचुर और समुचित फल चक्रवर्ती

शान्तिनाथ के चरणों पर न्योछावर कर रहा है।

वैसे तो आत्मा अनादि से है। पर पौराणिक प्रमाणो के अनुसार चक्रवर्ती शान्तिनाथ ने अपने पिछले ग्यारह भव भी उज्जवल-एव महान् विभव के साथ व्यतीत किये थे—यथा—

(१) राजा श्रीषेण (२) भोग भूमि मे आर्य (३) स्वर्ग के देव (४) विद्याधर (५) स्वर्ग के देव (६) वलभद्र (७) स्वर्ग के देव (७) वज्रायुध चक्रवर्ती (९) फिर अहमिन्द्र देव (१०) राजा मेघरथ (११) सर्वार्थसिद्धि के अधिकारी······

और इस प्रकार निरन्तर ग्यारह जन्मो की सफलता के वाद आज वारहवे और अन्तिम भव मे चक्रवर्ती, तथा कामदेव रूप तीर्थंकर पद पाया है।

× × × ×

६ |

## चक्रवर्त्ती शान्तिनाथ का वैराग्य–

"मैं सम्राट के दर्शनो का इच्छुक हूँ।"

"आपका परिचय ?"

"मैं रत्नतिलक नगर का निवासी हूँ। मुझे रतनसैन नाम से सम्वोधित किया जाता है।"

"ओह आप ! महाराज रतनसैन जी ! ! पधारिए ! पधारिए ! प्रतीक्षालय मे विराजिए ··· सम्राट भी अभी विश्राम पर है ··· आपको कुछ समय प्रतीक्षा करने का कष्ट उठाना पड़ेगा।"

"नही ! नही ! इसमे कष्ट की क्या वात है। मैं अवश्य प्रतीक्षा करूंगा।

मुख्य द्वार पर खड़े दरवान ने वहुत ही नम्र और सौम्य वचनो से निवेदन कर-राजा रतनसैन को प्रतीक्षालय मे ठहरा दिया।

प्रतीक्षालय का सेवक सभी सेवाओ से राजा रतनसेन को प्रसन्न रहने मे सहायक हो रहा था ।

राजा रतनसैन ।

प्रतीक्षालय मे वैठ तो गया पर अपने ही विचारो मे खो गया । ···"कितने सज्जन प्रकृति के सेवक है यहा ! वाणी मे मृदुता, नयनो मे नम्रता और मन मे पवित्रता तो यहा के सेवको मे जैसे कूट-कूट कर भर दी गई । नही तो कहा तो मै तुच्छ छोटी सी नगरी का छोटा सा राजा और कहा ये महान् सम्राट चक्रवर्त्ती । मेरे जैसों की तो यहा कुछ भी कदर नही होनी चाहिए थी ······

मैंने तो ज्यो ही हस्तिनापुर मे प्रवेश किया था त्यो ही मन कांप उठा था-हे भगवान । कैसे दर्शन उपलब्ध होगे सम्राट शान्तिनाथ के मुझे मुझे तो द्वार का दरवान ही अन्दर नही जाने देगा । मेरे जैसे तो उनके यहा ······

"जल पान कीजिएगा ।" सभ्यता के आवरण मे लिपटा एक सेवक आया और उसने निवेदन किया ।

"जलपान कीजिएगा" की मीठी ध्वनि ने राजा रतनसैन के विचारो को झक झोर दिया । राजा रतनसैन जैसे अचानक सोकर जागे हो ।

—आ ! ! ! ओह ! ··· नही, नही, जलपान तो मैं करके ही आ रहा हूँ । राजा रतनसैन खड़े हो गए ।

"अजी आप खड़े क्यो हो गए । हमतो आपके सेवक है आप हमारे स्वामी है । जलपान तो आपको करना ही चाहिए । जैसा भी है। वैसे आपकी ······"

सेवक और कुछ कहने था रहा था तभी राजा रतनसैन ने जल-पान का वह स्वर्ण थाल स्वीकार किया और उसे हिम्मत भी नही हुई कि वह सम्राट के सेवक की ओर दृष्टि उठाकर देखे । अपने इस महान सम्मान के वोझ से वह दवा जा रहा था । फिर वह वि

मे खोने लगा ।

"यह परिवार कैसा है इसकी पहचान उसके सेवक से हो सकती है क्योकि सज्जन और महान् उत्कृष्ट परिवार का सेवक भी सज्जन ही होता है। ··· यह भी महान् पुण्य ही का फल है ।

तभी मंगल ध्वनि के प्रसारण के साथ सम्राट चक्रवर्त्ती शान्तिनाथ ने विश्राम कक्ष से बाहर पदार्पण किया । ··· बाहर प्रतीक्षा मे बैठे सेवक ने बारम्बार अभिवादन के पश्चात् निवेदन किया ।

"महाराज के दर्शनो की अभिलाषा लिए रत्नपुर के महाराज रतनसैन जी प्रतीक्षा मे विराजे हुए हैं । उनके प्रति आदेश ···"

उनके बीच ही राजा रतनसैन भी बाहर आ गए थे ज्यो ही पद ध्वनि सुनी ··· सम्राट की ओर बढ़े और झुककर महानता का सत्कार किया ।

सम्राट शान्तिनाथ ने उन्हे अपने अक से लगा लिया ···

"कहिए पूज्य ! कैसे कष्ट किया ?"

"स्वामिन् ! कल प्रातः काल की मंगल वेला मे एक उत्सव का आयोजन किया जा रहा है, उसका महान् उद्घाटन ······"

समझगया ! समझगया ! रतनसैन जी······ आप बुजुर्ग हैं, पूज्य हैं, अतः आपके आयोजन का उद्घाटन मैं करूं ? ········· आपने······ फिर भी आप निश्चिन्त रहिये—मैं आपके आयोजन का आनन्द प्राप्त करने हेतु अवश्य उपस्थित होऊँगा ।"

राजा रतनसैन देखते ही रह गये । ओह, कितने पवित्र भाव हैं । ······धन्य है ! धन्य है ! मैं धन्य होगया स्वामिन् । मैं धन्य हो गया······ आगे वह कुछ भी न कह सका । आनन्द के रस मे वह इतना भीग गया था कि उसका आगे बोलना हो ही नही सका ।

अपने ही रथ मे बैठे राजा रतनसैन जैसे उड़े जा रहे थे । मन बांसों, प्रसन्नता की लहर के साथ उछल रहा था । आनन्द और प्रसन्नता के उमड़ते सागर मे वह विभोर हो नहा रहे थे ।

"अरे ! रथ जल्दी चला···रथवान।"

"जैसी आज्ञा राजन्।"

रथवान ने रथ के सुडौल शीघ्रगामी बैलों की रस्सी खैंची और शीघ्र चलने का सकेत दिया। बैल हवा हो गये।

"आहा ! ······छह खण्डाधिपति, चक्रवर्ती मेरे मगल आयोजन मे पधारेगे ! ! ! मैं तो धन्य हो गया। ··· बहुत विशाल कार्यक्रम रखूंगा मैं भी। नृत्य, गान, वाद्यवृन्द, सभी मगल प्रसाधन प्रस्तुत कराये जायेगे········

····· अरे भाई ! रथ और तेज चलाओ।"

"जी ! अभी लीजिये।

× × × +

सम्राट का विशाल और सर्व प्रसाधन-सम्पन्न अलंकार गृह।

सेवक, जो अलकार-सज्जा के सभी कृतो से विज्ञ थे—सम्राट शान्तिनाथ को अलकारो से सुसज्जित कर रहे थे। 'ककरण, कुण्डल, करधनी, मणिबन्ध, हार, कर–मुद्रिका, मुकुट विभिन्न रत्नों से चमकित अलकार सम्राट शान्तिनाथ को पहनाये जा रहे थे।

स्वतः ही कामदेव, और तिस पर अलकारो का धारण—सब कुछ मिलाकर शान्तिनाथ स्वय के समान स्वय ही थे। ऐसा तीनो लोक मे कोई भी तो नही था जिनके साथ आपका मेल विठाया जाय। आप के रूप-सौन्दर्य की उपमा किससे दी जाय ·····यह अनुपम तथ्य था।

"स्वामिन् !·········"

"कहो वत्स·········"

"······जरा काजल का यह टीका·····आज्ञा हो तो·····आप के कपोल पर ······"

"क्यो ? ···यह किस लिये ?"

"आपके इस अनुपम सौन्दर्य को कही किसी की कुदृष्टि न

सभी सदस्य इस महोत्सव में आ सम्मिलित हो गए थे ।

ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी की साँयकालीन माँगलिक वेला थी और भरणी नक्षत्र का प्रारम्भ था ।

आज सूर्य भी अपनी प्रचण्ड ज्वाला को उगलना भूल चुका था । मन्द सुगन्ध पवन चहुँदिश मे वह उठी थी । देवेन्द्र, राजेन्द्र, तिर्यन्चेन्द्र नागेन्द्र सभी अपने अपने परिवारों के साथ इस दीक्षा समारोह मे भाग ले रहे थे ।

सर्वार्थसिद्धि नामक पालकी में विराजित शान्तिनाथ को वैराग्य उपवन की ओर ले जाया गया । वहाँ स्फटिकमणी सी शिला पर विराज मान हो शान्तिनाथ, चक्रवर्ती महान् सम्राट शान्तिनाथ ने अपने सभी अलंकार, आभूषण, वस्त्रो का त्याग किया और पंचमुष्ठी से केश लोंचन किया ।

क्या मनोरम दृश्य था । वैराग्य के इस अनुपम दृश्य को देखकर और ससार की नश्वरता को समझकर अनेक राजाओ ने, रानियो ने, संसार की असारता से छुटकारा पाने हेतु दीक्षा धारण की ।

× × × ×

वैराग्य !

राग से मुक्त होना वैराग्य है । तो क्या राग कोई त्याज्य तथ्य है ? ··· हाँ ··· राग त्याज्य है । क्योंकि संसारिक विषय वासना की आसक्ति का नाम राग है । क्योंकि मोह की जननी राग है । क्यों-कि जीव को भव भव मे रूलाने वाला राग है । क्योकि राग एक ऐसा मीठा, तलवार की तीखीधार पर लगा शहद है जिसके चाटने से मीठे का स्वाद एक धोखा होता है ।अ र्थात् उस छल भरे मीठे के आनन्द मे जीभ कटा डालता है । अतः राग त्याज्य है

"मैं समझा नही ।"

समझोगे भी कैसे ? क्योंकि राग की परिभाषा रागी समझ ही नही सकता । यदि राग की परिभाषा रागी समझ जाय तो वह र ाग

से उन्मुक्त भी हो लेगा।

अजी साहब, दौलतराम जी ने छहढाला मे क्या कहा है—आपने शायद उस ओर ध्यान नही दिया। क्या ही अच्छा और सारपूर्ण भाव भरा है दौलत राम जी ने ? ......लीजिए आप भी उस भाव को परख लीजिए......

"वह राग आग दहै सदा—
तातै समामृत सेइये।
चिरभजे विषय कषाय अवतो—
त्याग, निजपद वेइए।"

जी हाँ ! यह राग, आग है आग। जीवन को झुलसाने वाली आग—जो जीवन को जीवन-पथ से विचलित करके ससार ताप मे डुबो देती है।

राग के वस होकर ही तो हम तेरी, मेरी कहा करते है, कन-कन के लिये लड मरते है, एक दूसरे का अहित कर बैठते है।

राग के वस होकर ही हम इन्द्रियो के गुलाम हो जाते है। आत्म बल खो बैठते हैं। शारीरिक वल भी गवा वैठते है।

राग बुरा है—पर हम है कि उसे छोडना ही नही चाहते। जानते है कि बुरा है, पर उसे बुरा समझते कहाँ है।

रागान्ध होकर हम विषय वासना के कुण्ड मे गोता लगा रहे है। दम घुटा जा रहा है, छटपटा भी रहे है, तडपन भी हो रही है—पर सब कुछ सहकर भी ढीठ वन कर ऐठ रहे हैं।

हम सत्यत: अज्ञानी ही है। हम से तात्पर्य रागी जीवो से है। यदि आप वैराग्य-मयी है अर्थात् राग छोड़ वैठे है तो आप धन्य हैं। हमे भी कोई सहज सरल पथ दिखाइए ताकि राग से छुटकारा पासके।

अरे ! आप पढे लिखे हैं, ज्ञान की उपलब्धि भी है फिर सतपथ मे देरी किस बात की। आप कभी भी एकान्त मे अपने बारे मे

सोचिये तो सही। पर सोच जब ही सकोगे तब कि विषय वासना की ओर से एकदम मुंह फेर लोगे।

अजी विषय वासना के कषायले रस को तो हम पीते ही आए है—भला वे छूटे कैसे ?

वाह ! क्या बात कही है आपने ? अरे ! साहब—छहढाली की उन पक्तियो को तो और अवधारिये।

'चिर भजे विषय कषाय अब तो—त्याग, निज पद बेईये।"

अर्थात् अपने स्वरूप को पहचानने के लिये राग रूप विषय कषाय को त्यागना ही पड़ेगा।

अतः सम्राट चक्रवर्ती शान्तिनाथ ने विषय कषाय के पोषक राग का त्याग किया और ससार सागर से मुक्ति पाने हेतु वैराग्य धारण करके दिगम्बर महामुनि बने।

× × × ×

महामुनि !

तप तेज की कान्ति लिये जन-जन को शान्ति पथ प्रदर्शित करने वाले मुनि शान्तिनाथ दीक्षा के पश्चात् आज प्रथम बार आहार-चर्या को उठे। आज जन-मानस मुनि शान्तिनाथ के आहार-दृश्य को देखने को लालायित था। देवगण दृष्टि लगाये हुये थे कि देखो कहां आहार होता है। विचित्र धारणा के साथ मुनि ने आहार को गमन किया था। कौन भाग्यशाली है...जो अपने गृह पर ऐसे महान् मुनि को आहार देगा।

गौ-चर्या सदृश महामुनि शान्तिनाथ ने मन्दिरपुर नगर मे प्रवेश किया।। सुन्दर सुसज्जित भवनों के द्वार पर स्त्री पुरुष करबद्ध हाथ मे कलश, श्रीफल, आम्रफल आदि ले लेकर पडगाहन को खड़े थे। सभी की यह भावना थी कि आहार हमारे यहाँ हो।

गृहस्थ महामुनि को बीस कदम दूरी पर से देखतेही बोल उठते—

"हे स्वामी, नमोस्तु। नमोस्तु ! नमोस्तु ! अत्र तिष्ठहु, तिष्ठहु—तिष्ठहु आहार-जल शुद्ध है।"

महामुनि एक तिरछी दृष्टि से गृहस्थ को देखते और फिर आगे बढ़ जाते। अपने पास से आगे बढ़ते देखकर गृहस्थ फिर हाथो मे लिये उपकरणो को बदलते, कभी सिर पर रख कर पडगहाते और कभी

मात्र हाथ जोड़ कर ही।

महामुनि वढे जा रहे थे-शायद उनकी धारण की गई धारणा मिल नही पा रही थी। महामुनि के पीछे पीछे असंख्य जन समूह भी था।

पुण्य की उपलब्धि से विभूषितराजा सुमित्र भी अपनी रानी सुमित्रा के साथ अपने भवन के द्वार पर पड़गाहन-उपकरण लिए खड़ा था। ज्यों ही महामुनिराज को उसने देखा कि बोल उठा—

"हे स्वामी नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु। अत्रतिष्ठहु, तिप्ठ,हु तिष्ठहु-आहार जल शुद्ध है।"

यहा भी महामुनि राज ने एक दृष्टि से देखा वे वही खड़े होगए उनकी धारण की गई धारणा यहां उपलब्ध हो गई थी। राजा रानी आनन्द के रस मे नहा उठे। उन्होने मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दी और नमोस्तु किया। पश्चात् भोजनशाला मे पधारने हेतु निवेदनकिया।

महामुनि शान्तिनाथ को उच्च आसन पर विराजमान कराकर दोनों ने पद प्रक्षालन किया और भक्ति भाव से पूजा की। फिर अपनी मन , वचन, काय की शुद्धि को प्रकट किया।



महामुनिराज का आहार प्रारम्भ हुआ। राजारानी व अन्य जो भी उत्सुक था उसने आहार दिया। अपने आंगन में अमूल्य निधि को पाकर राजा रानी तो प्रसन्न हो ही रहे थे-पर सारा शहर भी आज प्रसन्नता से नाच रहा था।

पंचाश्चर्य की वर्षा हुई। घर घर में मंगल गान हुआ। गगन मंडल "भगवान शान्तिनाथ की जय" की ध्वनि से गुंजायमान हो उठा

× × × ×

७ |

## त्याग तपस्या रूप संयम-शिखर पर

त्याग कहो अथवा संयम। अर्थ एक सा ही है। क्योकि दोनों का एकीभाव सम्बन्ध है।

छहखण्डाधिपति, चक्रवर्ती शान्तिनाथ ने संसार के विषय भोगो का त्याग किया-अर्थात् जीवन मे सयम को अवधारण किया।

क्यों! क्यों! क्यो!!

क्या दुःख था उन्हें? क्या असुविधाएं थी उन्हे? ··· क्या अरूचिकर था उन्हें? छियानवे हजार रानिया। असंख्य सेवक सेविकाएं।

छहखण्ड—भू के अधिपति।

चौदहरत्न, अष्टसिद्धि नवरिद्धि की उपलब्धि! अटूट वैभव।

सभी कुछ तो था उनके पास। फिर उन्होने क्यों त्याग किया इन सबका? भला जिसे प्राप्त करने के लिए दान, पुण्य आदि शुभ कार्य करता है—और जिसे प्राप्त करने के लिए स्वर्ग के देव भी लालायित हैं, उन्हें ये महामुनि शान्तिनाथ क्यो छोड़ बैठे?-

आइए हम यह सब उन ही से क्यों ना पूछलें। जितना सरल सत्य समाधान हमारी इन शंकाओ का वे कर सकते है उतना कौन करेगा तो आइए उनके पास चले। "···नमोस्तु स्वामिन्।"

"धर्म वृद्धि हो ।"

"स्वामिन् । हमारी कुछ शकाए है ··· जिनका हम समाधान' ···

"अवश्य । अवश्य । आपकी सभी शकाओ का समाधान आपको अवश्य मिलेगा । आपकी सभी शंकाओ का मनन कर लिया गया है । मन पर्यय ज्ञानी महामुनि शान्तिनाथ ने विना बताऐ ही सभी शकाओं को जान लिया था । अत: अपने मधुर वाक्यामृत द्वारा समाधान करने लगे ।

"भव्य ! संसार मे उपलब्ध सभी सुख-दु:ख की सामग्री प्राणी को उसके कर्मानुसार मिलती है। और तुम जानते ही हो कि सासारिक सभी सामग्री स्थायी नही है ।"

"हाँ प्रभो ! जानते है।"

"और यह भी जानते हो कि ससार मे जो उत्पन्न होता है उसका मरण भी होता है । चाहे रंक हो, चाहे महान् वैभवशाली । जव आयु समाप्त होती है तो उसे एक पर्याय से दूसरी पर्याय के लिये दौड लगानी पडती है ।"

"हाँ ! हाँ प्रभो ! यह जन्म मरण तो चलता ही रहा है!"

"जव चलता ही रहा है तो बताओ सुख किसमे माने । क्योकि प्रत्येक वस्तु का सयोग, वियोग सहित है। अच्छा तो तुम्हारे यह देवी देवता, यह—मन्त्र तन्त्र, यह सैन्य सम्पत्ति क्या मरण वक्त को—रोक सकती है ? उस मरणासन्न आत्मा को शरण दे सकते है ?

"नही ! नही ! नही प्रभो। ऐसा तो कभी हुआ ही नही ।

"और यह भी तुमने देखा होगा कि इस ससार मे सभी इच्छाओं, तृष्णाओ के दास हो रहे है। निर्धन—धन के विना और धनी—तृष्णा के वश दु:खी रहते है। कौन यह कह सकता है, कि मैं सुखी हूँ । उसके ससारिक सुख की ओट मे दु ख ताक लगाये वैठा रहता है । अरे वत्स ! यह ससार है ही मात्र दु:ख का सागर ।"

"अटल सत्य है स्वामिन् ! ससार मे कोई सुखी नही है।"

"सुखी भी नही है और कोई इसका साथी भी नही। भरे पूरे परिवार में क्या स्त्री, क्या पुत्र, क्या मां, क्या अन्य परिजन; मरण समय मे कोई भी तो यह नही कहता कि—चलिये, मैं भी आपके साथ चल रहा हूँ। यह आत्मा अकेला जन्मता है और अकेला ही प्रयाण करता है। सब मात्र—अपने स्वार्थ के लिये रोते पीटते हैं।"

"हाँ प्रभो ! रोते पीटते तो बुरी तरह ही है।"

"पर बताओ तो भव्य ! उनके रोने पीटने से क्या उस मरणासन्न आत्मा को लाभ मिल सकेगा ? किसी को भी लाभ नही होने का। यदि मोह भी किया जाय तो किससे ? जहाँ यह शरीर ही नश्वर है, वहाँ कौन अपना ? यह ठाठ बाट, परिजन परिवार सब मात्र छलावा है।

"यह सब घृणित है स्वामिन्।"

.........… अरे भोले भव्य। यह क्या घृणित है ? घृणित तो यह शरीर है जिसमे रक्त, मज्जा, हड्डी, चर्म आदि भरे पड़े हैं। जो शरीर इस आत्मा के साथ ससार में आया है वह एक घृणित पीजरा है। हम और की तो क्या बात करे इस शरीर के साथ कैसा मोह ?"

"किन्तु स्वामिन् ! यह मोह तो दुष्ट,कम होता ही नही।"

"ओह ! भोले भव्य प्राणी ! इस मोह की नीद मे आकर ही तो यह संसारी प्राणी वेसुध हुआ जा रहा है। कर्म-चोर इसका विवेक-भण्डार लूटे जा रहे है—इसका भी इसे भान नहीं रहता। कभी सच्चे तत्वज्ञानी गुरु का सहारा भी लिया है—इस मोही जीव ने ?··· बिना तत्वज्ञानी सच्चे गुरु के, इसे इस मोह-नीद से कोई नहीं जगा सकता।

और जब तक भेद विज्ञान इस आत्मा को न होगा—यह कर्म के चक्कर मे फँसा ही रहेगा। भेद विज्ञान पूर्वक ही शुभाशुभ कर्मो के आश्रव को रोक सकता है।

"लेकिन स्वामी, जो कर्म, जो संस्कार पूर्व मे सचित किये जा चुके है उनका क्या होगा ?"

"जव तत्व के मर्म को जानेगा' पाप कषायों से दूर रहेगा' इन्द्रियो के विपय-भोगो से विरक्त होगा तो वे सचित कर्म तो नष्ट होते नजर आयेंगे।"

"स्वामिन्। क्या इस ससार की रचना मानव ने की है ? यह आत्मा-आखिर क्यो ससार का परिभ्रमण करता है ?"

"शका उचित है भव्य। यह ससार खड़े हुए पुरुषाकार का है। अनादि है। स्वय है। यह आत्मा अज्ञान वश संसार परिभ्रमण कर रहा है। सत्य अर्थो मे इस संसार मे इसका अपना कोई भी नही, परन्तु फिर भी यह मोही आत्मा अज्ञानता-वश ससार की भोग्य सामग्री को ही सव कुछ समझ लेता है।"

"क्या ससार मे कुछ भी तथ्य या सार वस्तु नही है प्रभो ?"

"है क्यो नही। ससार मे सार वस्तु मानव तन है। मानव तन पाकर यदि इस आत्मा को एक दुर्लभ तथ्य है तो वह है 'ज्ञान'। आत्मा यदि चाहे तो विवेक पूर्वक मोह ममता का त्याग करके स्व-पर पहचान कर दुर्लभ पदार्थ ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।"

"स्वामिन्। चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष आदि जव संसार मे मिल सकते है तो फिर इस आत्मा को और ऊहापोह मे ......"

"अरे भोले मानव। चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष, यन्त्र मन्त्र आदि तो विनाशीक है और मांगने पर फल देने वाले है जिनसे आत्म-ज्ञान का कोई सम्वन्ध नही। यदि विना चाहे विना मागे कोई फल देने वाला है तो वह है एक 'धर्म'। धर्म ही प्राणियो को ससार सागर से पार उतारने वाला एक जहाज है।"

हमारी प्रत्येक शका का समाधान हो चुका। अव हम यह नहीं कह सकते कि तीर्थंकर व चक्रवर्त्ती शान्तिनाथ ने वैराग्य क्यो लिया है वैराग्य का आध्यात्म रस का आस्वादन सुनने में नही अपितु उसे

अवधारण करने मे ही आता है। बाहर भावनाओं का तथ्य भरा विवेचन करके मुनि श्री शान्तिनाथ ने सहज सरल समाधान हमे दिया।

वैराग्य विभूषित भगवान शान्तिनाथ, ने दिगम्बर मुनि रूप मे चारो दिशाओ मे विहार किया। अचल और निश्छल, मन व इन्द्रिय निग्रह करते हुए चरित्ररथ पर सवार भगवान शान्तिनाथ संयम के शिखर पर पहुँच रहे थे।

स्वामी समन्तभद्राचार्य के शब्दो मे:—

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी स प्रसश्यते ॥

विषयवासना से दूर, आरम्भ परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान, तप मे लीन ही सच्चे साधु कहलाते है—और भगवान शान्तिनाथ सच्चे साधु थे।

मुनि या साधु के २८ मूल गुण होते हैं। अठ्टाइस मूलगुणों मे से यदि एक मूलगुण भी न हुआ तो वह मुनि या साधु नही कहला सकता। २८ मूलगुण निम्न प्रकार है:—

५ महाव्रत का पूर्ण पालन करना—अहिसामहाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और अपरिग्रह महाव्रत। श्रावक जिन व्रतो को सावधान होकर थोडा थोड़ा (एक देश) पालता है—मुनि उन्ही व्रतो को पूर्ण रूप से पालते है।

पाँच समिति का पालन— ईर्या (दिन मे सूर्य के प्रकाश मे जमीन को देखभाल कर जीवों की रक्षा करते हुए चलना), भाषा (हित, मित प्रियः वचन बोलना) ऐषणा (भोजन—दिन में एक वार, शुद्धि-पूर्वक छियालीस दोष टाल कर करना), आदान निक्षेपण (पीछी कमण्डलु आदि रखते, उठाते वक्त जीव रक्षा का ध्यान रखना) और प्रतिष्ठापन (मल—मूत्र छोडते समय जीव रक्षा का लक्ष्य रखना)।

पाच इन्द्रिय विजय—पाचों इन्द्रियां—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु

और कर्ण के विषयो मे आसक्त न होना। अच्छे विषयो से राग न करना बुरे विषयो से द्वेष न करना।

छह आवश्यक करना—सामायिक (एकान्त मे आत्मध्यान करना), स्तुति (तीर्थंकरो के गुणानुवाद करना), वन्दना (तीर्थंकरो को भावपूर्वक वन्दना करना), प्रतिक्रमण (प्रमाद से लगे हुये दोषो का शोधन करना, भविष्य मे दोप न लगे इसके लिये मन वचन कार्य से सावधान रहना), स्वाध्याय (पठन पाठन आत्मचिन्तन मे लीन रहना), कायोत्सर्ग (शरीर से ममत्व त्याग कर खडे होकर ध्यान करना)।

(२२) स्नान न करना (भोजन हेतु जब गृहस्थ के यहाँ जाते है तो गृहस्थ ही उनका शरीर पोछ देता है)।

(२३) दन्तधावन नही करना (भोजन करते समय ही गृहस्थ के घर पर मुख शुद्धि कर लेते है)।

(२४) पृथ्वी पर सोना।

(२५) खडे होकर भोजन करना।

(२६) दिन मे एक बार ही भोजन करना।

(२७) नग्न रहना (परिग्रह का अन्तरग व वाह्य से त्याग पूर्वक)।

(२८) केश लोच करना।

इस प्रकार २८ मूलगुणो का पालन प्रत्येक साधु अचल होकर करता है।

२८ मूलगुणो का पालन करते हुये भगवान शान्तिनाथ साधु से उपाध्याय हुये और उपाध्याय से आचार्य। उपाध्याय के २५ मूल गुण (११ अग+१४ पूर्व के पाठी) एव आचार्य के ३६ मूलगुण (५ आचार, १० धर्म, १२ तप, ३ गुप्ति एव ६ आवश्यक) पूर्ण तरह आप मे थे।

महान् तपस्वी हो आप सदैव दश लक्षण धर्म का पालन करते रहे। यथा—

(१) उत्तमक्षमा—सदैव शान्त एव समता भाव ।

(२) उत्तम मार्दव— गर्व रहित कोमल भाव ।

(३) उत्तम आर्जव—निष्कपटता पूर्वक पवित्र भाव ।

(४) उत्तम सत्य—वाणी में पूर्ण सत्यता ।

(५) उत्तम शौच—लोभ का परित्याग पूर्वक सतोष धारण ।

(३) उत्तम त्याग—अन्तरंग एव बाह्य के सम्पूर्ण परिग्रह, ममता, मोह का त्याग ।

(७) उत्तम सयम—इन्द्रियों के विषयो से पूर्ण अनासक्ति ।

(८) उत्तम तप—निकाँक्षित भाव से ध्यान रूढ होना ।

(९) उत्तम आकिचन—निस्पृही होकर वन, गुफा पर्वत पर निवास ।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य—शील के अठारह हजार भेद प्रभेदो को ध्यान मे रखकर विकारी भावो को सम्पूर्ण त्याग कर आत्म-रमण करना ।

महा मुनि भगवान शान्तिनाथ १२ प्रकार के तप भी करते रहे जो आत्म-आवरण को हटाने के लिये उचित है । यथा—

(१) अनशुन—व्रत, उपवास आदि करना ।

(२) अवमौदर्य—रागभाव दूर करने के लिये भूख से कम खाना ।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान—आहार हेतु जाने के लिये घर, गली, मुद्रा आदि का अटपटा नियम ले लेना ।

(४) रस परित्याग—इन्द्रियो के दमन हेतु घृत दुग्ध आदि रसो का त्याग करना ।

(५) विविक्तशय्यासन—एकान्त व पवित्र स्थान मे सोना, बैठना ।

(६) कायक्लेश—ऐशो आराम की भावना दूर करने के लिये आतापन योगादि धारण करना ।

(७) प्रायश्चित—प्रमाद अथवा अज्ञान से लगे हुये दोषो की शुद्धि करना।

(८) विनय—रत्नत्रय व उसके धारको की सेवा करना।

(९) वैयावृत्य—रोगी, वृद्ध मुनियो की सेवा करना।

(१०) व्युत्सर्ग—बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहो का त्याग करना।

(११) स्वाध्याय—आलस्य त्याग कर ज्ञान का आराधन करना।

(१२) ध्यान—चित्त की चञ्चलता को रोककर उसे आत्म चिन्तन मे लगाना।

भगवान शान्तिनाथ महान् त्याग और तपस्या की मूर्ति थे। रागद्वेष का परित्याग करके निर्मल भावनाओ के स्रोत थे। त्याग एवं तपस्या के प्रभाव से आश्चर्यकारी ऋद्धियाँ उन्हे प्राप्त होने लगी। यथा—

(१) अठारह प्रकार की बुद्धि ऋद्धि—केवल बुद्धि, मन-पर्यय बुद्धि, अवधि बुद्धि, कोष्ठबुद्धि, सभिन्नस्रौत बुद्धि, पादानुसारिणी, दूरास्पर्शन, दूरास्वादन, दूरगध, दूरावलोकन, दूरश्रवण, दशपूरव, चौदह पूर्व, अष्टाङ्ग निमित्त, प्रज्ञाश्रवण, प्रत्येक बुद्धि, वादित्व।

नव भेद सहित चारण ऋद्धि—जल चारण, तंतूचारण, पुष्पचारण, पत्रचारण, बीजचारण, श्रेणीचारण, अग्निचारण नभश्चारण,

(३) ग्यारह भेद सहित विक्रिया ऋद्धि—अणिमा, महिमा, लघिमा गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशत्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान एवं कामरूपिणी।

(४) सप्त प्रकार तपोतिशय ऋद्धि—उग्रतपोतिशय, दीप्त तपोतिशय

तप्त तपोतिशय, महातपोतिशय, घोर तपोतिशय, घोर पराक्रम तपोतिशय, अघोर ब्रह्मचर्य तपोतिशय ।

(५) तीन भेद सहित वल ऋद्धि–मनोबल, वचनवल और कामवल

(६) अष्टप्रकार औषधऋद्धि—आयर्शौषधि, खेलौषधि, जल्लौषधि, मल्लौषधि, विडौषधि, सर्वौषधि, आस्यलिषौषधि, एव दृष्टि–विषौषधि ऋद्धि ।

(७) छह प्रकार रसऋद्धि—आशीत्रिषरस, दृष्टिविषरस, क्षीरस्त्राविरस, मधुस्राव–रस, सर्पिस्राविरस, अमृतस्राव–रस ।

(८) द्विविध प्रकार अक्षीण महानस ऋद्धि—आहार अक्षीण महानस, स्थान अक्षीण महानस ऋद्धि ।

इस प्रकार यद्यपि आश्चर्यकारी महान् महान् ऋद्धियाँ तप के प्रभाव से प्रकट होने लगी–पर भला भगवान शान्तिनाथ को इन सबसे क्या प्रयोजन ? लोभ नही कोई राग, नही कोई मोह नही जिनके वश हो इन ऋद्धियों का प्रयोग करे ।

मुनि भगवान शान्तिनाथ इनका प्रयोग ना करे तो क्या ? ऋद्धियाँ तो अपना प्रभाव दिखाती ही है दर्शक–भक्तजनो का उपकार तो करती हैं । इसीलिए तो दुःखी मानव ऐसे महान् उपकारी प्रभो की शरण मे वार वार जाकर अपने दुःख का निवारण कर पाता है ।

महामुनि भगवान शान्तिनाथ तो अपने आत्म चिन्तन मे लीन थे । संसार शरीर से पूर्ण तरह निरमोही हो चुके थे । असह्य परिषह भी आपका कुछ नही विगाड़ सके । आगम वर्णित २२ प्रकार के

परिषह (कष्ट) होते है।   यथा—

(१) क्षुदा ···शान्त भाव से क्षुदा दुःख को सहलेना, क्षुदा विजय

(२) तृषा—शान्तभाव से तृषा परिषह को सह लेना तृषा विजय।

(३) शीत—शीत की वेदना को भी शान्त भाव ने सह लेना-शीत विजय ।

(४) उष्ण—कडकड़ाती अगार बरसाने वाली ग्रीष्म को भी शान्त भाव हो सह लेना।

(५) दशमशक—डाश, मच्छर, चिवटी आदि के काटने को शान्त भाव से सहलेना।

(६) नाम्न्य—नग्न रहते हुये मन मे किंचित विकार उत्पन्न न करना।

(७) अरति—अरति के कारण उपस्थित होने पर भी अप्रीति न करना।

(८) स्त्री—स्त्रियो के हाव भाव प्रदर्शनो के उपसर्गो उपद्रवो को निर्मल भाव से सह लेना।

(९) चर्या—गमन करते समय खेद खिन्न न होना।

(१०) निषधा—ध्यान के लिये निश्चित किये हुये समय से विचलित न होना।

(११) शय्या—विषम, कठोर. ककरीले आदि स्थानो मे एक करवट से निद्रा लेना। उपसर्ग आने पर भी शरीर को चलायमान न करना।

(१२) आक्रोश—दुष्ट जीवो द्वारा कहे हुए कठोर शब्दो को सुनकर भी शान्त रहना।

(१३) वध—तलवार, लाठी, भाले, बरछे आदि से शरीर पर प्रहार करने वालो के प्रति किंचित भी द्वेष भाव न करना।

(१४) याचना—प्राणो का वियोग होने पर भी आहारादिक नही मांगना ।

(१५) अलाभ—आहारादि न मिलने पर भी सन्तोषित रहना।

(१६) रोग—अनेक रोग होने पर भी शान्त भाव हो सहना।

(१७) तृणस्पर्श—चलते समय पावो मे तृण, काँटे वगैरहा के चुभ जाने से उत्पन्न दुःख को सह लेना।

(१८) मलपरिषह—जलकायिक जीवो की हिसा से वचने के लिए स्नान न करना, मलिन शरीर को देखकर ग्लानि न होना।

(१९) सत्कार पुरस्कार—गुणो की अधिकता होने पर भी यदि कोई सत्कार पुरुष्कार न करे तो चित्त मे कालुषता भर खिन्नता ना लाना।

(२०) प्रज्ञा—ज्ञान की अधिकता होने पर मान न करना।

(२१) अज्ञान—ज्ञानादिक की हीनता होने पर लोगों द्वारा किए हुए तिरस्कार को शान्त भाव से सह लेना।

(२२) अदर्शन—बहुत समय कठोर तप करने पर भी विशेषज्ञान या ऋद्धियाँ प्राप्त न हो तो भी अश्रद्धान के भाव नही होना।

इस प्रकार क्रमानुसार २२ परिषह को आगे लिखे शान्त,निर्मल भावो से महामुनि भगवान शान्तिनाथ सहलेते थे। या हम यो भी कह दे तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि भगवान शान्तिनाथ पर उक्त २२ परिषह अपना कुछ भी प्रभाव नही डाल सकते थे। क्योकि चरम-शरीरी पर कोई भी उपसर्ग, कोई भी परिषह कुछ भी प्रभाव नही डाल सकते।

राग द्वेष और मोह से अलिप्त भगवान शान्तिनाथ ने महान् तप किया और कर्मो को निर्जर करने लगे।

# कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति एवं समवशरण में उपदेशामृत की वर्षा

रत्नत्रय ।

सम्यक्दर्शन (Right Faith) सच्ची श्रद्धा ।

सम्यक्ज्ञान (Right Knowledge) सच्चा ज्ञान ।

सम्यक् चरित्र (Right Character) सच्चा चारित्र ।

सम्यक्दर्शन अर्थात् तत्व श्रद्धान जब निर्दोष, मलरहित हो जाता है तो अनुभूति का ज्ञान सम्यक्ज्ञान और आचरित चारित्र सम्यक् चारित्र हो जाता है ।

ज्यो-ज्यो आत्म-ज्ञान की अनुभूति होती जाती है त्यो-त्यो ही आत्म पटल पर छाए आवरण लुप्त होते जाते हे । ज्यो ही आत्म-पटल पर छाए आवरण लुप्त हुये कि आत्म ज्योति (कैवल्य ज्ञान) प्रकट हो जाता है ।

केवलज्ञान आत्मा का स्वभाव है। वह कही से उपलब्ध नही किया जाता, पर विभिन्न कर्मावरण से अच्छादित आत्मा पर से त्याग सयम और तप द्वारा आवरण को लुप्त करके आत्म स्वभाव को स्पष्ट पाया जाता है ।

यथा सूर्य पर आच्छादित घन (मेघादि) से सूर्य की ज्योति छिप जाती है। पर ज्यो ही वायु वेग से मेघ पटल हटा कि सूर्य ज्योति फिर प्रकट हो जाती है । सूर्य की ज्योति सूर्य मे ही थी, कही से लाई नही गई ।

आत्म पटल पर विशेष तौर से छाया हुआ आवरण 'मोह' का होता है । जिसके कारण अन्य ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म भी अपना आवरण डाल देते हैं ।

अतः यह सिद्ध हो जाता है कि आत्म ज्ञान प्राप्त करने के लिये सर्व प्रथम 'मोह' से छुटकारा पाना होगा ।

मोह के साथ-साथ रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि दुष्परा गतियां व दुष्प्रवृत्तिया घर कर बैठती है।

मोहनीय कर्म को आगम मे दो भेद से कहा है। यथा : दर्शन—मोहनीय और चरित्र मोहनीय।

दर्शन मोहनीय कर्म के उदय पर सम्यक्दर्शन नही हो पाता चरित्र मोहनीय के उदय पर सम्यक् चारित्र नही हो पाता। इसलिये सर्व प्रथम आत्म ज्ञान की उपलब्धि के लिये दर्शनमोहनीय व चारित्र मोहनीय कर्म पर विजय प्राप्त करनी होती है।

ज्यों ज्यो इन कर्मो पर विजय प्राप्त करता 'आत्मा' आत्मज्ञान की ओर बढता है त्यो त्यों ही उसके भाव उत्कृष्ट होते जाते है।

भावो के इस नीचे की ओर से सर्वोच्च शिखर पर चढने की कला को आगम मे "गुणस्थान" चढना कहा गया है।

गोमट्टसार जीवकाण्ड के आधार पर "मोह और योग के निमित्त से होने वाली आत्मा के सम्यकदर्शन, सम्यक्ज्ञान, और सम्यक् चरित्र गुण की अवस्थाओ को गुण स्थान कहते है।"

यद्यपि मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चरित्र इस तरह रत्नत्रय रूप है। किन्तु गुणस्थानो के निर्माण मे सम्यक्दर्शन और सम्यक्चरित्र दो प्रधान है जैसा कि 'मोह योग भवा' इस लक्षण पद से मालूम होता है।

गुण स्थान चौदह होते है। अर्थात् आत्मा के पतन से उत्थान की ओर चढने की चौदह श्रेणियाँ होती है।

यथा:—

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान—दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रृद्धान न होने को मिथ्यात्व गुणस्थान कहा।

(२) सासादन सम्यक्त्व गुणस्थान—सम्यक्त्व की तो विराधना हो गई और मिथ्यात्व उदय मे अभी आया नही। भावार्थ पर्वत से जैसे कोई गिरा-पर अभी भूमि पर नही आया। पर्वत से गिरना और

भूमि पर न आना शेष बीच का स्थान जो रहा। इसी प्रकार सम्यक्त्व की विराधना करके आत्मा गिरा पर अभी मिथ्यात्व कीच मे नही गिरा। ऐसे उदाया उदयी भाव को सासादन गुणस्थान जानना।

(३) सम्यक् मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थान—सच्चा भी और झूंठा भी, श्रद्धान होना सम्यक् मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। इसमे मिले जुले भाव होते हैं।

(४) अविरत सम्यक्त्व—सच्चा श्रद्धान तो हो जाना पर जीवन मे सयम कर किंचित भी न अवतरना। अर्थात् व्रत उपवासादि न कर पाना। विषय कषायो से विरक्त न होना। मात्र सच्चे गुरु के उपदेश को ग्रहण करता हुआ सच्चा श्रद्धानी वना है।

(५) देश सयत गुणस्थान—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती आत्मा के भाव यहाँ आकर अणुव्रतादि धारण करने के होते हैं। और वह एक देश व्रत ग्रहण कर सयमी जीवन मे प्रवेश करता है।

(६) प्रमत्त विरत गुणस्थान — जिसने सकल व्रत अगीकार कर लिये हो अर्थात् महाव्रत धारण कर के निर्ग्रन्थ अवस्था रूप मुद्रा धारण करली हो किन्तु संज्वलन कषाय के रहने से प्रमादी भी रह रहा हो। यहाँ आकर

आत्मा परिग्रह का अन्तरंग बाह्य से ममत्व त्याग कर महान् तपस्वी बनता है। संसार, शरीर और भोगो से विरक्तता हो जाती है।

(७) अप्रमत्त विरत गुणस्थान—छठे गुणस्थानवर्ती आत्मा के इस स्थान पर आकर सज्जवलन कषाय का मन्द (बहुत कम) उदय रहता है। इसलिये यहाँ वह प्रमादी नही होता। इस गुणस्थान मे दो विशेषता है। एक तो यह है कि आत्मा आगे की श्रेणी मे न चढने का भाव बनाकर वापस छठे मे आजाता है और दूसरा यह है कि आगे की श्रेणी मे जाने का भाव बना लेने के कारण आगे भी चढ जाता है। यह आत्मा छठे से सातवे मे और सातवे से छठे मे हजारों बार आता जाता रहता है।

(८) अपूर्वकरण गुणस्थान—ऐसे निर्मल परिणाम जो पूर्व मे न हुए हो, वे इस श्रेणी मे आकर होते है। यही से आगे बढने के लिये दो रास्ते मिलते है। एक तो कषायों को निर्मूल करते हुये (क्षपकश्रेणी) और दूसरा कषायो को उपशम (दबाते हुये) करते हुए-(उपशम श्रेणी)। उपशम श्रेणी वाला ग्यारहवे गुणस्थान में अवश्य जाता है। क्षपक श्रेणी वाला दसवे से बारहवे मे जाता है। ग्यारहवे मे नहीं।

(९) अनिवृत्तिकरण गुणस्थान—यहाँ आने वाले साधुओं के

भावो मे समानता रहती है। विलक्षण भाव होते है।

(१०) सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान—इस श्रेणी वालो के राग लोभ कपाय सूक्ष्म होते हैं। यहाँ मात्र सूक्ष्म लोभ कपाय ही होता है। अन्य कपाय नही। राग भी अत्यन्त सूक्ष्म होता है।

(११) उपशान्त कपाय गुणस्थान—यहाँ वस कपाये उपशान्त हो जाती हैं। यहाँ उपशम हुये कपाय उभर भी सकते है अतः नीचे की श्रेणी में भी इस श्रेणी वाला गिर सकता है और यदि उभर न पाये तो बारहवे मे भी चढ सकता है।

(१२) क्षीण कपाय—यहाँ समस्त कपाये क्षीण हो जाती है। यहाँ परिणाम विशुद्ध और निर्मल होते है।

(१३) सयोग केवली गुणस्थान—चार घातियाँ कर्म नष्ट करने पर यह श्रेणी उपलब्ध होती है। यहाँ आत्मा अनन्तसुख अनन्तदर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्तवीर्य प्राप्त करती है। केवल्य ज्ञान प्रकट होता है। भव्य जीवो के निमित्त से इनका उपदेशामृत हेतु विहार होता है। यहाँ योग रहता है। इसी लिये सयोग केवली गुणस्थान नाम है।

(१४) अयोग केवली गुणस्थान—योग के नष्ट होते ही ये केवल ज्ञानी सकल परमात्मा अयोग केवली कहलाते है।

## पौष शुक्ला दशमी की सुहानी सन्ध्या !

आज महामुनि भगवान शान्तिनाथ सहस्राम्रवन मे नन्द्यावर्त्त वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर सत्-चित् आनन्द रूप हो अपने ही आप लीन ध्यानस्थ हो रहे है।

पूर्व की ओर मुख था, निर्ग्रन्थता आदि समस्त वाह्य सामग्री उन्हें प्राप्त थी, अध.करण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन करणों (गुणस्थान) से प्राप्त हुई क्षपक श्रेणी के मध्य मे अवस्थित थे, सूक्ष्म साम्पराय नामक चतुर्थ चरित्र रूपी रथ पर आरूढ थे, प्रथम शुक्ल ध्यान रूपी खड्ग के द्वारा उन्होने मोह रूपी शत्रु पर अचल विजय प्राप्त की, अब वे वीतराग होकर यथाख्यात चरित्र के धारक हो गये।

अन्तर्मुहुर्त वाद उन्होने द्वितीय शुक्ल ध्यान चक्र के द्वारा घातिया करमो को नष्ट किया। इस तरह मोहनीय कर्म का क्षय होने से वे निर्ग्रंथ हो गये। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म का अभाव होने से नीरज (रज रहित अर्थात् निर्दोष) हो गये, अन्तराय कर्म का क्षय होने से वीतविघ्न (विघ्न रहित) हो गये और समस्त संसार के एक सुहितकारी वान्धव होकर उन्होने अत्यन्त शान्त **केवल ज्ञान** रूपी साम्राज्य-लक्ष्मी को प्राप्त किया।

"कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया" जानकर चतुर्निकाय के देवो का समूह दर्शनार्थ, पूजनार्थ एव भक्ति प्रकटनार्थ उमड़ पड़ा। इन्द्र ने समवसरण (सभा मण्डप) की अद्भुत मनोज्ञ एव विशाल रचना की।

समवसरण में भगवान सर्वज्ञ शान्तिनाथ के चक्रायुधादि छत्तीस गणधर (ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के धारी प्रमुख शिष्य) थे। इसी प्रकार आगमानुकूल वर्णित इकतालीस हजार शिक्षक थे, तीन हजार अवधि ज्ञानी थे, चार हजार केवल ज्ञानी थे, छह हजार विक्रिया ऋद्धि के धारी मुनि थे, चार हजार मनः पर्यय ज्ञानी और दो हजार चार सौ पूज्यवादी उनके साथ थे। इस प्रकार भगवान

शान्तिनाथ के साथ बासठ हजार मुनि राज थे। इनके अतिरिक्त साठ हजार तीन सौ हरिषेणा आदि आर्यिकायें थी, सुरकीर्त्ति आदि दो लाख श्रावक एव चार लाख श्राविकायें थी। असख्यात देव देवियाँ और सख्यात तिर्यन्च थे। कुल मिलाकर विशाल चतुर्विधि सघ के नायक भगवान शान्तिनाथ भूमण्डल पर प्राणिमात्र के हित के लिये उपदेशामृत की वर्षा करने लगे।

केवल ज्ञान की उपलब्धि होते ही भगवान शान्तिनाथ ने "अरहन्त" पद को प्राप्त किया। जहाँ कोई मलिनता, कोई दोष नही होता। तीन लोक की अनन्त पर्यायो को, भूत, भविष्य एव वर्तमान काल की सब पर्यायो को एक साथ स्पष्ट एव सत्य जानने का विज्ञान उन्हे उपलब्ध हुआ।

जन्म, मरण, जरा, भूख, प्यास, आश्चर्य, पीड़ा, खेद, रोग, शोक, भय, मद, मोह, निद्रा, चिन्ता, पसीना, राग और द्वेष इस प्रकार के अठारह दोष से मुक्त भगवान शान्तिनाथ पूर्ण निर्दोष हुए।

आठ प्रातिहार्य, चौतीस अतिशय, और चार अनन्त चतुष्टय अर्थात् ४६ मूलगुण के धारी अरहन्त भगवान शान्तिनाथ सशरीरी भी मुक्त थे।

समवसरण (सभा मण्डप) मे बारह विभाग होते है—अत: भगवान शान्तिनाथ के समवसरण मे भी बारह विभाग (सभायें अथवा कोठे) थे। जिनमे क्रमश:

(१) गणधर, मुनिगण,
(२) कल्पवासी देव गण,
(३) आर्यिकायें,
(४) ज्योतिष-देवागनाये,
(५) व्यन्तरनी,
(६) भवनवासिनी देवागनायें,
(७) भवन वासी देवगण,

(८) व्यन्तर देवगण,

(९) ज्योतिप देवगण,

(१०) दिग्पाल गण,

(११) मनुष्य,

(१२) तिर्यन्च,

शान्तचित हो वैठकर भगवान मुख से निकली दिव्यध्वनि द्वारा वर्मोपदेश सुनकर सत् पथ प्राप्त करते थे।

तो क्या भगवान सभा मे विराजे हुये सभी प्राणियो के प्रति राग भाव करते हुये उपदेश दिया करते है ?

नही ! नही ! राग तो भगवान के होता ही नही। वीतराग के राग का क्या काम ? ना राग होता है और ना मोह और ना द्वेप।

तो फिर वे उपदेश क्यों देते है ? उन्हे क्या आवश्यकता पड़ती है ?

इसका उत्तर रत्नकाण्ड श्रावकाचार मे आचार्य समन्त भद्र ने दिया है। यथा—

अनात्मार्थ विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।

ध्वनन् शिल्पि कर स्पर्शा न्मुरजः किम पेक्षते॥

भावार्थ—जैसे मृदङ्ग वजाने वाले से कुछ नही चाहता और न सुनने वालो से कुछ प्रेम ही करता है, उसी तरह वीतराग देव भी इच्छा और स्वार्थ विना भव्यों को हित का उपदेश देते है।

भगवान शान्तिनाथ ने अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा हमे वताया कि—

'धर्म' आत्मा का अपना 'स्वभाव' होता है। जो कभी भी विपरीत नही हो सकता। आत्म स्वभाव के विपरीत कार्य का ही नाम पाप है। सर्व हितकारी भाव सहित कार्य ही पुण्य है।

'धर्म' किसी सम्प्रदाय की व्यक्तिगत वपौती नही। सम्प्रदाय तो एक विपक्षी नाम है। जिसको प्रकट करने वाला कोई एक व्यक्ति

होता है। कोई एक समाज होता है।

परन्तु प्राणी-मात्र का हितकारी और पक्षपात रहित सतपथ प्रदर्शक एक अपना आत्म स्वभाव, जो दया, क्षमा, शील और सत्य सयम से ओत-प्रोत होता है।

अवोध प्राणियो को समझाने के लिये इसको दो भागो मे वांट देना होता है—जिसे हम गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म कहते है।

गृहस्थ धर्म ससार के कार्य मे फसे गृहस्थ को संसार के प्रपन्चों से भरे जाल मे से निकलने की राह वताता है। और मुनि धर्म··· आत्मा को कर्म-मुक्त—अति निर्मल वनाने की राह वताता है।

दोनो का तात्पर्य 'आत्म-सन्तोप स्वभाव-धर्म' प्राप्त करने का है। और इसी का नाम धर्म है।

इसको हम योभी कह सकते हैं कि "चरित्र ही धर्म है। क्षमा-शील, दया, सत्य, सयम ही धर्म है। समता भाव ही धर्म है और सर्व भूतेपु आत्मवत् भाव ही धर्म है।

उपरोक्त मे परस्पर कोई भिन्नता नही है मात्र शव्द भेद है। भाव-भेद नही। अत. धर्म वही है जो आत्मा को दुःख से छुटकारा दिलाकर सच्चे सुख मे पहुँचा दे।

पन्द्रह तीर्थंकर पूर्व मे हो चुके हैं, जिन्होने कल्याणकारी तीर्थ की स्थापना की और ससार कीच मे फसे भोले प्राणियो को धर्मोपदेश द्वारा पार किया।

जैनधर्म क्या है? यह प्रश्न उभर कर पाठको की दृष्टि मे आ सकता है। इसका विश्लेपण अरहन्त देव ने अपनी दिव्यध्वनि द्वारा इस प्रकार किया है—

'जैन धर्म' वाक्य दो शव्दो द्वारा पूर्ण होता है यथा—जैन और धर्म। अर्थात् 'जिन' के द्वारा कहा गया धर्म जिन ने जिस धर्म का कथन किया है उपदेश दिया है वह धर्म है जैन धर्म।

'जिन' कोई ईश्वरीय अवतार नही होते वे तो स्वय अपनी

पौरुष के वल पर अपने काम-क्रोधादि विकारो को जीत कर 'जिन' वनते है ।

'जिन' शब्द जीतने वाला नाम की सार्थकता का द्योतक है। अर्थात् जिसने आत्मवल द्वारा विषय-कषायादि विकारो पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली वही जिन होता है।

'जिन' शब्द सम्प्रदायवाद या व्यक्ति विशेप का अपवाद नही है, अपितु प्राणीमात्र को सन्मार्ग पर लगाने वाला एक विशेष पुरुष होता है। जो कोई भी मनुष्य वन सकता है। होना चाहिए उसमे आत्मवल, होना चाहिये उसमे सासारिक विषय विकारो पर विजय पाने का साहस ।

जैनधर्म के विचारों का मूल है—स्याद्वाद ! और आचार का मूल है अहिंसा। अर्थात् 'मा हिंस्यात सर्व भूतानि'—किसी भी प्राणी की हिसा मत करो ।

हिसा का विश्लेषण करते वक्त ध्यान रखना है कि हिंसा-भाव हिसा और द्रव्यहिसा दो प्रकार से होती है ।

मन मे विकार, कामक्रोधादि कपायो का रखना भाव या स्व हिंसा होती है। मन वचन कर्म से पर को सताना द्रव्य हिंसा होती है। 'अहिंसा'—विश्व-प्रेम का एक मूल मंत्र है ।

जैन दर्शन का प्राण 'अनेकान्तवाद है। इसके द्वारा मानव वस्तु-तत्व को सम्यक् प्रकार जान सकता है ।

इस प्रकार अनेक सिद्धान्तों का स्वरूप वताते हुये भगवान शान्तिनाथ ने असख्य जीवो का उद्धार किया ।

९ |

## मोक्ष-गमन

ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी !

आठ करमो की १४८ प्रकृतियो मे से चार घातियाँ करमो की ६३ कर्म प्रकृतियों को नष्ट करके तो भगवान शान्तिनाथ ने अरहन्त

पद प्राप्त किया। अवशेष चार अघातियाँ करमो को आज वे नष्ट करने जा रहे हैं।

भावो की उत्कृष्टता और आत्मा से परमात्मा बनने की एक महति अनुभूति पूर्वक प्रणाली है। जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय, ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय का अन्तर नही रहता। तब स्वय ही ध्यान, ध्याता ध्येय और स्वय ही ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय हो जाते है।

आज का दिन महान हैं जबकि भगवान शान्तिनाथ सिद्ध होने वाले हैं।

पर्वतराज सम्मेदशिखर और जेष्ठकृष्णा चतुर्दशी के दिन रात्री के पूर्व भाग मे उन कृतकृत्य भगवान शान्तिनाथ ने तृतीय शुक्ल ध्यान के द्वारा समस्त योगो का निरोध कर दिया, बन्ध का अभाव कर दिया और अकार आदि पाच लघु अक्षरो (अ इ उ ऋ लृ) के उच्चारण मे जितना समय लगता है उतने समय मे अयोग केवली (चौदवे गुणस्थान) अवस्था प्राप्त की। वही चतुर्थ शुक्लध्यान के द्वारा तीनो शरीरो का नाश कर भरणी नक्षत्र मे लोक के अग्रभाग पर जा विराजे।

उस समय गुण ही उनका शरीर रह गया था। अतीत काल मे गए हुए कर्म मल रहित अनन्त सिद्ध जहा विराजमान थे वही जाकर विराजमान हो गए।

उसी समय इन्द्र सहित चारो प्रकार के देव आए और अन्तिम सस्कार निर्वाण कल्याणक की पूजा कर अपने अपने स्थान को चले गए।

शान्ति प्रदाता भगवान शान्तिनाथ सौलहवे तीर्थंकर का चरित्र चित्रण करने और पढने को सार्थकता तभी मिल सकती है जबकि उनके गुणो का अवधारण किया जाय। जीवन शान्ति के पथ पर चल निकले और चरित्र की उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त करने के लिये त्याग को जीवन मे महत्व दिया जाय।

शान्ति प्रदाता शान्तिनाथ के महान् साधन पथ से प्रभावित हो क्या देव, क्या मानव सभी नतमस्तक, भावविभोर हो पूजा करते हैं।

# शान्ति प्रदाता भगवान शान्तिनाथ की भाव भीनी पूजन

(वसन्त रचित)

स्थापना—

शान्तिनाथ हो शान्ति जिनेश्वर, विश्वसैन हो प्रिय पुत्र।
जन्म लिया हस्तिनापुर नगरी, किया सभी ने हृदय पवित्र।
पंचम चक्री हुये-विभूति, पाई सिद्ध शिला रमणीक।
पूजूं आज चरण मैं तुमरे, मिले शान्ति यहाँ शान्ति समीप॥

## द्रव्याष्टक

जल— छोड जगत जंजाल आपके चरणो मे, मैं आया हूँ।
जन्म मृत्यु के दुख जो भारी, भूल यहाँ सब पाया हूँ॥
शान्तिनाथ के चरण कमल, जिनको मन में पधराया हूँ
छूटूं जन्म जरा के दुख से, याते नीर चढाया हूँ॥

चन्दन— मिली आपको सम्पत्ति भारी, चक्रवर्ती बन पाये थे।
किन्तु जानकर ताप जगत की, उसको तब ठुकराये थे॥
मैं भी दु:खी ससार ताप से, चरण शरण मे आया हूँ
मिटे जगत का ताप प्रभो, मैं चन्दन अतः चढ़ाया हूँ॥

अक्षत— उज्ज्वल अक्षत लिए आज मैं देख रहा तुमको जिनवर।
कैसा शाश्वत पद है आपका, शान्त निराकुल अविनश्वर॥
मेरा भी आतम तुम जैसा, पर-पदवी मे छाया है।
मिले अक्षय पद तुमसा मुझको, एक यही मन भाया है॥

पुष्प— शास्त्र साक्षी, हजार छिन्वे रानी थी तुम राजा थे।

किन्तु त्याग किया, रख सयम, धन्य आप मुनिराजा थे ॥
मैं भी जीतू कामवाण को, निरख आप, अपनायाहूँ ।
लेकर पुष्प, शान्ति चरणो मे आज चढाने आयाहूँ ॥

नैवेद्य— इच्छाओ से घिरा हुआ मैं, चला अनादि से भूखा ।
इच्छा भरी नही अब तक भी, तृष्णा ने मुझको लूटा ॥
आज हृदय की क्षुदा वेदना, जिसे त्यागने आया हूँ ।
ले नैवेद्य शान्त-चरणो मे, मैं अर्पण करने आया हूँ ॥

दीप— मिथ्यामोह के घोर तिमिर मे सुधबुध भी हा ! विसर गई ।
छाया हुआ अन्धेरा-भौतिक, आँखे अग्नि वरस रही ॥
आज जगाने ज्ञान-ज्योति मैं ज्योति-चरण मे आया हूँ ।
दीप समर्पण करता जिनवर, शरण-चरण अब पाया हूँ ॥

धूप— कैसे नष्ट किए करमो को, सोच अचम्भा होता है ।
मेरा आतम तो है जिनवर ! कर्मों के वस रोता है ॥
आप सरीखा हूँ जब मैं फिर, क्यो निज पन भुलवाया हूँ ।
कर्म कटे पाऊ शिव-रमणी, याते धूप चढाया हूँ ।

फल— वीतराग हो, शान्त-जिनेश्वर पूजन वीतराग की है ।
फल क्या चाहूँ- वनू आप सम, समझ स्वय जो अपनी है ॥
शान्ति प्रभो तुम शान्ति पुंज हो मिले मुझे भी शान्ति अनूप
लेकर फल मैं अर्पण करता, प्राप्त करू मैं आप-स्वरूप ॥

अर्घ— अष्ट द्रव्य ले आज चरण-कमलों पर मैं प्रभु ! आया हूँ ।
धन्य हुआ तव दर्शन पाकर झुक झुक शीश नवाया हूँ ॥
शान्ति प्रभो ! गुण आपके मैंने मन ही मन अवधारे है ।
अर्घ चढाऊ भक्ति भाव से विना राग तुम तारे हैं ॥

## पंच कल्याणक

गर्भ— है एरा माता धन्य उदर जिसके प्रभु आन समाए थे ।
भाद्रपदी सप्तम कृष्णा थी रोम रोम हरषाए थे ॥

जन्म— जब ज्येष्ठकृष्णा चौदस की प्राची चमकी हस्तिनापुर नगरी।
जन्म लिया हुई रत्नवृष्टि तब नाच उठी जनता सगरी ॥
तप— जन्मतिथि की तिथि जो आई उद्यान नगर हस्तिनापुर का
लिया वैराग्य छोड़ जग झगड़े धन्यप्रभु ! अपने पन का।
ज्ञान— चारो कर्म नशे जब खोटे पौष-दशै उजियारा था।
केवल ज्ञान हुआ जिनवर को मिटा अज्ञान जो कारा था ॥
मोक्ष— शुभ अशुभ सब कर्म खिपाए ज्येष्ठ चतुर्दशी कारीको।
मोक्ष-महल मे जाय विराजै शाश्वत सुख अधिकारी हो ॥

## जय माला

दोहा— शान्ति मृंगाकित-शान्तिवर शान्ति शान्ति-करतार ।
शान्त-हृदय मे अवतरिए शान्ति-पुंज सुखकार ॥१॥
छन्द— हे प्रभु ! शान्ति मै आज शरण चरणो मे आ हरपाया हूँ।
उमग रहा दिल भक्ति भाव से अतुल शान्ति जो पाया हूँ ॥
देख हृदय की कीट कालिमा अपनी आज यहाँ आकर ।
क्षुब्ध हुआ हूँ भारी प्रभुवर ! झुका हुआ शिर शरमाकर ।२।
ज्यो ही निरखा रूप आपका याद मेरी अब आई है ।
आपकी मूरत मेरी सी जो नयना बीच समाई है ॥
धन्य आप जो चक्रवर्त्ती थे अतुल सम्पत्ति के मालिक ।
मारी लात विनश्वर जानी किया त्याग जो थी कालिख ।३।
यह ससार रागमय सारा कौन किसी का रहा यहा ?
यहि जान प्रभु भए दिगम्बर मिले शान्ति का श्रोत जहा ॥
धन्य नगर हस्तिनापुर तेरी जय हो ! जय हो ! बारम्बार ।
जहा प्रभु शान्ति ने देने शान्ति हेतु लीना अवतार ॥४॥
आजधन्य मैं भी हूँ जिसने लखा आपका शान्ति द्वार ।
मेरा भी मन शान्त हो प्रभु अर्ज चरण मे बारम्बार ।
आज शान्त है मन मेरा भी नहीं वासना का संक्लेश ।
नहीं द्वेष है नही मोह है भावो मे खोया हूँ जिनेश ॥५॥

लाखो पापी तार दिए प्रभो ! जो भी तेरी शरण पड़ा।
मुझको भी तारो हे जिनवर शुद्ध भाव से चरण खड़ा।
आज शान्ति-पथ मिला यहां पर तेरे ही गुण गा गाकर ।
शान्ति मिले बस-अन्त मे मुझको यही भाव हो सुख पाकर ॥

शान्ति प्रभो के चरण को,
जो भवि मन पधराय ।
मिले शान्ति अनुपम अटल,
अजर अमर पद पाय ।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

## —आरती शान्तिनाथ भगवान की—

ओम् जय शान्तिनाथ देवा, स्वामी जय शान्तिनाथ देवा ।
शान्ति प्रदाता शान्ति सुधाकर, सुरनर करि सेवा। ओ०
पिता आपके विश्वसैनजी, ऐरा-थी माता । स्वामी०
जिनके आगन हस्तिापुर मे जन्मे शान्ति दाता। ओम्०
पचम चक्री कामदेव, थे अतुल बली स्वामी । स्वामी ।
त्याग सभी संसारिक वैभव बने आत्मज्ञानी । ओ०
सत्य अहिसा, स्यादवाद की वाणी थी हितकर। स्वामी
भवसे पार किया प्रभु तुमने जीव, बोध देकर। ओ०
शान्ति सिन्धु हो, शान्ति पुज हो, शान्ति के कर्त्ता ।
शान्ति मिले बस अन्त मे मुझको, तुम मेरे भर्त्ता ।
ओम् जय शान्ति ॥

## (शान्तिजिनेश्वर जय हो तेरी)

ओ जगत के शान्तिदाता, शान्ति जिनेश्वर जय हो तेरी। ओ०
किसको मैं अपना कहूँ, कोई नजर आता नही ।
इस जहा मे आप बिन कोई भी मन भाता नही ।
तुम ही त्रिभुवन विधाता शान्ति जिनेश्वर जय हो तेरी। ओ

तेरी ज्योति से जहां में ज्ञान का दीपक जला ।
तेरी अमृत वाणी से ही, राह मुक्ति का मिला ।
शीश चरणों मे झुकाते शान्ति जिनेश्वर जय हो तेरी । ओ०
मोह माया में फसा, तुमको भी पहचाना नही ।
ज्ञान है न ध्यान दिल में धर्म को जाना नही ।
दो सहारा मुक्तिदाता, शान्ति जिनेश्वर जय० ॥ ओ० ।
वन के सेवक हम खड़े हैं, स्वामी तेरे द्वार पे ।
हो कृपा तेरी तो बेड़ा पार हो संसार से ।
तेरे गुण "सौभाग्य" गाता, शान्ति जिनेश्वर जय० ।
ओ जगत के शान्ति दाता ··· ।

## श्री शान्ति नाथ चालीसा

### दोहा

शान्तिनाथ महाराज का चालीसा सुखकार ।
मोक्ष प्राप्ति के लिये, कहूँ सुनो चित धार ॥
चालीसा चालीस दिन तक, कह चालीस वार ।
वढ़े जगत सम्पत, सुमत, अनुपम शुद्ध विचार ॥

### चौपाई

शान्तिनाथ तुम शान्तिनायक, पञ्चम चक्री जग सुखदायक ।
तुम्हीं सोलवे हो तिर्थङ्कर, पूजें देव भूप सुर गणधर ।
पञ्चाचार गुणों के धारी, कर्म रहित आठों गुणकारी ।
तुमने मोक्ष मार्ग दर्शाया, निजगुण ज्ञान भानु प्रकटाया ।
स्याद्वाद विज्ञान उचारा, आप तिरे औरन को तारा ।
ऐसे जिनको नमस्कार कर, चढ़ू सुमत शान्ति नौका पर ।
सूक्ष्म सी कुछ गाथा गाता, हस्तिनागपुर जग विख्याता ।
विश्वसेन ऐरा पितु, माता, सुर तिहुँ काल रतन वर्षाता ।
साढ़े दश करोड़ नित गिरते, ऐरा मां के आगन भरते ।
पन्द्रह माह तक हुई लुटाई, ले जाँ भर भर लोग लुगाई ।

भादो वदि सतमी गर्भाते, उत्तम सोलह स्वप्ने आते ।
सुर चारो निकायो के आये, नाटक गायन नृत्य दिखाये ।
सेवा मे जो रहे देवियाँ, रखती मा को खुश दिन रतिया ।
जन्म जेठ वदि चौदस के दिन, घंटे अनहद वजे गगन घन ।
तीनो ज्ञान लोक सुखदाता, मगल सकल हर्ष गुण लाता ।
इन्द्र देव सुर सेवा करते, विद्या कला ज्ञान गुण वढते ।
अङ्ग अङ्ग सुन्दर मनमोहन, रत्न जड़ित तन वस्त्राभूषण ।
वल विक्रम यश वैभव काजा, जीते छहो खण्ड के राजा ।
न्याय वान दानी उपकारी, परजा हर्षित निर्भय सारी ।
दीन अनाथ दुखी नही कोई, होती उत्तम वस्तु वोई ।
ऊचे आप आठसो गज थे, वदन स्वर्ण अरु चिह्न हिरण थे ।
शक्ती ऐसी थी जिस्मानी, वरी हजार छानवे रानी ।
लख चौरासी हाथी रथ थे, घोड़े क्रोड़ अठारह शुभ थे ।
सहस पचास भूप के राजन, अरवो सेवा मे सेवक जन ।
तीन करोड़ थी सुन्दर गइया, इच्छा पूर्ण करे नव निधिया ।
चौदह रत्न व चक्र सुदर्शन, उत्तम भोग वस्तुयें अनगिन ।
थी अड़तालिस क्रोड़ ध्वजायें, कुण्डल चन्द्र सूर्य सम छायें ।
अमृत गर्भ नाम का भोजन, लाजवाब ऊचा सिंहासन ।
लाखो मन्दिर भवन सुसज्जित, नार सहित तुम जिनमे शोभित ।
जितना सुख था शान्तिनाथ को, अनुभव होता ज्ञानवान को ।
चलें जीव जो त्याग धर्म पर, मिले ठाट उनको ये सुख कर ।
पच्चीस सहस्र वर्ष सुख पाकर, उमड़ा त्याग हितङ्कर तुम पर ।
जग तुमने क्षण भंगुर जाना, वैभव सव सुपने सम माना ।
ज्ञानोदय जो हुआ तुम्हारा, पाये शिवपुर भी ससारा ।
कामी मनुज काम को त्यागे, पापी पाप कर्म से भागे ।
सुत नारायण तरत विठाया, तिलक चढा अभिषेक कराया ।
नाथ आपको विठा पालकी, देव चले ले राह गगन की ।

इत उत इन्द्र चवर ढुरावें, मंगल गाते वन पहुँचावें।
भेष दिगम्बर अपना कीना, केश लौच पन मुष्ठी कीना।
पूर्ण हुआ उपवास छुटा जब, शुद्धाहार चले लेने तब।
कर तीनों वैराग चिन्तवन, चारो ज्ञान किये सम्पादन।
चार हाथ मग लखते चलते, पट कायक की रक्षा करते।
मनहर मीठे वचन उचरते, प्राणिमात्र का दुखड़ा हरते।
नाशवान काया यह प्यारी, इससे ही यह रिस्तेदारी।
इससे मात पिता सुतनारी, इनके कारण फिरो दुखारी।
गर यह तन ही प्यारा लगता, तरह-२ का रहेगा मिलता।
तज नेहा काया माया का, हो भरतार मोक्ष दारा का।
विषय भोग सब दुख के कारण,त्याग धर्म ही शिव के साधन।
निधी लक्ष्मी जो कोई त्यागे, उसके पीछे पीछे भागे।
प्रेम रूप जो इसे बुलावे, उसके पास कभी नही आवे।
करने को जग का निस्तारा, छओ खण्ड का राज विसारा।
देवी देव सुरासुर आये, उत्सव तप कल्याण मनाये।
पूजन नृत्य करे नत मस्तक, महिमा गाई प्रेम पूर्वक।
करते तुम आहार जहाँ पर, देव रत्न वर्षाते उस घर।
जिस घर दान पात्र को मिलता घर वह नित्य फूलता फलता।
आठों गुण सिद्धों के ध्या कर,दशो धर्म चित काय तपाकर।
केवल ज्ञान आपने पाया, लाखो प्राणी पार लगाया।
समवशरण मे ध्वनि खिराई, प्राणी मात्र समझ मे आई।
समवशरण प्रभु का जहां जाता, कोस चारसो तक सुख आता।
फूल फलादिक मेवा आती, हरी भरी खेती लहराती।
सेवा मे छत्तीस थे गणधर, महिमा मुझ से क्या हो वर्णन।
नकुल सर्प मृग हरि से प्राणी,प्रेम सहित मिल पीते पानी।
आप चतुर मुख विराजमान थे,मोक्ष मार्ग को दिव्यवान थे।
करते आप विहार गगन मे, अन्तरिक्ष थे समवशरण मे।

तीनों जग आनन्दित कीने, हित उपदेश हजारों दीने।
पौने लाख वर्ष हित कीना, उम्र रही जब एक महीना।
श्री सम्मेद शिखर पर आये, अजर अमर पद तुमने पाये।
निष्पृह कर उद्धार जगत के, मोक्ष गये तुम लाख वर्ष के।
आँक सके क्या छवी ज्ञान की, जोत सूर्य सम अटल आपकी।
बहे सिन्धु सम गुण की धारा, रहो सुमत, चित नाम तुम्हारा।

**सोरठा**

नित चालीस ही बार पाठ करे चालिस दिन।
खेये धूप सुसार शाँतिनाथ के सामने ॥
होवे चित्त प्रसन्न भय चिन्ता शका मिटै।
पाप होय सब हन्न बल विद्या वैभव बढ़ै ॥

जाप-ओह्ली अर्हं श्री शातिनाथाय नमः

इति परम मवाप्य ज्ञानहक सौख्य वीर्य-
स्फुरित तनु निवास व्यादृत्ते स्थान मुच्चैः।
सुरपति दृढ पूज्यः शान्ति भट्टारको वो-
दिशतु परम सप्तस्थान सम्प्राप्ति माप्तः ॥

—इस प्रकार जिन्होने उत्तम ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य से सुशोभित परमौदारिक शरीर मे निवास तथा परमोत्कृष्ट विहार के स्थान प्राप्त किए, जो अरहन्त कहलाये और इन्द्र ने जिनकी दृढ पूजा की ऐसे श्री शान्तिनाथ भगवान तुम सबके लिये सात परम स्थान प्रदान करे। (इतिशुभम)

११

# परिशिष्ट

हस्तिनापुर

मेरठ शहर (उ०प्र०) से उत्तर पूर्व मे २२ मील दूर एक प्राचीन ऐतिहासिक तीर्थ क्षेत्र है। जहाँ इस वक्त भी प्राचीन संस्कृति को याद दिलाने वाला एक ऊंचे टीले पर प्राचीन खण्डहर है। जहा इस वक्त विशाल जैन मन्दिर और चार विशाल निषिध्याएं है।

यह वही हस्तिनापुर है, जहां भगवान आदिनाथ ने इक्षुरस का आहार ग्रहण किया था और इस आहार को राजा श्रेयान्स ने देकर दान प्रथा को जन्म दिया था।

यह वही हस्तिनापुर है जहां भगवान शान्तिनाथ, भगवान कुन्थु नाथ और भगवान अरहनाथ के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणक हुए थे। जिन्होने छः खण्ड पृथ्वी की दिग्विजय करके राज चक्रवर्ती की विभूति पाकर उसको तृणवत समझते हुए उसे त्याग कर धर्म-चक्रवर्ती हुए।

यह वही हस्तिनापुर है जहां महाराज जयकुमार राज्य करते थे जो भरत चक्रवर्ती के सेनापति भी थे। जिनका विवाह काशी के राजा अकम्पन की सुपुत्री सुलोचना के साथ हुआ था, और जहां भरत चक्रवर्त्ती ने न्याय का डंका बजाया था।

यह वही हस्तिनापुर है, जहां कुटिल परिणामी बलि ने छलपूर्वक राज्य प्राप्त करके ७०० मुनियो पर घोर उपसर्ग किया था। और जिसको दूर करने के लिये विक्रयाऋद्धि प्राप्त पूज्यमुनि विष्णु कुमार 'वामन' रूप बनाकर आए थे। घोर उपसर्ग दूर करके, भव्य जनो को आनन्द पहुँचाया था। इस महान उपसर्ग निवारण दिवस ने 'रक्षा बन्धन' पर्व को जन्म दिया था।

यह वही हस्तिनापुर है जहाँ कौरव-पाण्डवो की धमा-चौकड़ी रही है। जहा सती द्रोपदी का चीर हरा गया। और सत्य शील द्वारा द्रोपदी जी ने लाज बचाई।

और यह वही हस्तिनापुर है जहा दिल्ली के सेठ सुगनचन्द जी ने निराभिमान पूर्वक; उदारता के साथ सभी पचो का मान-सम्मान रखते हुए आज के विशाल मन्दिर का भव्य निर्माण कराया।

यहां एक विशाल दिगम्बर और एक विशाल श्वेताम्बर जैन मंदिर है। दिगम्बर निषिधाएं तीन है और श्वेताम्बर एक है।

प्रस्तुत चित्रण मे वर्तमान चौबीस तीर्थङ्करो मे से सोलहवें तीर्थङ्कर

भगवान शान्तिनाथ के जीवन वृत्त का रूपक दिया गया है। जिन का जन्म, तप, ज्ञान सभी कुछ 'हस्तिनापुर' में हुआ।

अतः हस्तिनापुर ऐतिहासिक स्थान है। धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से इसका महत्त्व भारतीय घटनाओ में है। क्या जैन, क्या शैव, क्या वैष्णव सभी हिन्दु जातियां किसी न किसी रूप मे यहां अपनापन सिद्ध करते हैं। और उसी का यह परिणाम है कि कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, अष्ठाहिनका पर्व की समाप्ति पर यहा विशाल मेला एक लाख जनसख्या की उपस्थिति में प्रायः पूर्ण होता है।

× × ×

## जैन धर्म की ऐतिहासिक प्राचीनता

जैन धर्म अथवा जैन जाति की ऐतिहासिक प्राचीनता के विषय में यदि कोई निश्चयात्मक बात कही जा सकती है तो वह यह होगी कि जितनी ही ऐतिहासिकता भारतवर्ष के ऐतिहासिक काल की सिद्ध होती जायगी उतनी ही जैनधर्म की प्राचीनता प्रकट होगी। कारण कि भारत के प्राचीन काल में जैनधर्म के अस्तित्व की प्रधानता रही है।

जैन एव जैनेतर साहित्य से यह स्पष्ट है कि भगवान ऋषभदेव ही जैनधर्म के आद्य प्रवर्त्तक थे। प्राचीन शिलालेखो से भी यह तथ्य प्रमाणित है कि श्री ऋषभदेव जैनधर्म के प्रथम तीर्थङ्कर थे और भगवान महावीर के समय मे भी ऋषभदेव की मूर्तियों की पूजा जैन लोग करते थे।

श्री विंसेण्ट ए० स्मिथ का कहना है कि "मथुरा से प्राप्त सामग्री लिखित जैन परम्परा के समर्थन मे विस्तृत प्रकाश डालती है और जैनधर्म की प्राचीनता के विषय मे अकाट्य प्रमाण उपस्थित करती है। तथा यह बतलाती है कि प्राचीन समय मे भी वह अपने इसी रूप में मौजूद था। ईस्वी सन् के प्रारम्भ मे भी अपने विशेष चिन्हों के साथ

चौबीस तीर्थङ्करों की मान्यता में दृढ़ विश्वास था।

मेजर जनरल जे०सी०आर० फर्लांग महोदय अपनी 'दि शोर्ट स्टडी इन साइन्स आफ कम्परेटिव रिलिजियन' नाम की पुस्तक मे लिखते है :—

'ईसा से अगणित वर्ष पहले जैनधर्म भारत में फैला हुआ था। आर्य लोग जब मध्य भारत मे आए तब यहाँ जैन लोग मौजूद थे।'

जैकोली, ने इनसाईक्लोपेडिया आफ रिलीजन एन्ड ईथिक्स भाग २ पृष्ठ १९९–२०० पर लिखा है कि प्राचीनतम पुद्गलिक सिद्धान्त का श्रेय एक मात्र जैनों को है।

जब जैनधर्म का अस्तित्व हिन्दुओं के वेदो मे भी प्राचीन प्रमाणित है तब उसे बौद्ध कालीन या बौद्ध धर्म से निकला हुआ समझना नितान्त मिथ्या है।

भगवान ऋषभदेव और उनके पुत्र चक्रवर्ती भरत का विस्तृत विवरण वेदों, महाभारत आदि जैनेतर पुराणो मे मिलता है। जिससे जैनधर्म की प्राचीनता सहज ही आकी जा सकती है।

यथा :—भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) के माता पिता (माता-मरुदेवी पिता-नाभि) के बारे मे श्रीमद्भागवत् ५/४/५ पर लिखा है—

'विदितानुरागमापौर प्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समय सेतु रक्षायामभिषित्य ••• सह मरुदेव्या विशालायां प्रसन्न निपुणेन तपसा समाधियोगेन•••महिमानमवाय।'

इसका भाव ऐसा है कि नाभि ने अपने पुत्र (ऋषभ) को राज्य देकर मरुदेवी के साथ समाधि (दीक्षा) को धारण कर महिमा को प्राप्त किया।

विष्णु पुराण २/१/२७ पर लिखा है :—

हिमाह्वयं तु वै वर्षं नामेरासीन्महात्मनः।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मरुदेव्यां महाद्युतिः॥

भावार्थ—हिमनामक वर्ष नाभि का था और नाभि राजा के, रानी मरुदेवी से ऋषभ नामापुत्र हुए। ये ऋषभ तीर्थंकर जैनियों मे प्रथम तीर्थंकर हैं।

भारतवर्ष का नाम 'भारत' की सार्थकता और उपादेयता को समझाते हुए विष्णु पुराण में ही २/१/३२ पर लिखा है—

ततश्च भारतंवर्ष मेतल्लोककेषु गीयते।
भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठिता वनम्॥

—जब पिता ने भरत को राज्य दिया और स्वय(ऋषभदेव)वन को (तपस्याहेतु) चले गए तब से यह भारतवर्ष कहलाया।

इसी प्रकार बदरीनाथ-धाम (बदरी विशाल) जो अति प्राचीन क्षेत्र माना गया है। उसके भी सभी कारण जैन तीर्थंकर ऋषभदेव से सम्बन्ध रखते हैं। जैसा कि श्री दि० मुनि विद्यानन्द जी ने गतवर्ष सन ७१ मे जाकर सिद्ध किया।

राजा जनक (सीता के पिता), स्वयं रामचन्द्रजी भी जैन थे। वे भी अहिसा के पुजारी थे। अहिसा को हृदय में रखते हुए ना वे माँस खाते थे, ना शहद का ही सेवन करते थे। जैसाकि वाल्मीकि रामायण ३६/४१ (सुन्दरकाण्ड) में भी वर्णित है—

न मासं राघवो भुक्ते न चैव मधु सेवते।
वन्य सुविहितं नित्यं भक्त मशनाति केवलम्॥

रामचन्द्रजी माँस भक्षण नही करते,वे मधु का सेवन नही करते वे तो केवल भली भाँति निष्पन्न किए हुए भात (चावल) का सेवन करते है।

"निवृत्त माँसस्तु तत्र भवान् जनकः—" (उत्तारामचरित ४/१)
अर्थात्—जनक महाराज मासपरित्यागी हैं।

२१ वें तीर्थङ्कर भगवान नेमीनाथ तो वसुदेव-पुत्र कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता थे। महाभारत में कई स्थान पर 'अरिष्ट नेमि' नेमीनाथ तीर्थंकर का नाम आया है।

भगवान नेमीनाथ भी भगवान ऋषभ देव की तरह सब परिधान त्यागकर दिगम्बर हो आत्मध्यान मे लीन हो गए और केवल ज्ञान को प्राप्त करके गिरनार से ही निर्वाण लाभ किया—जैसा महाभारत मे भी लिखाहै।

'युगे युग महापुण्यं दृश्यते द्वारका पुरी।
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभास शशि भूषणः॥
रेवताद्रो जिनो नेमियु गादि विमला चले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम्॥

इसके अतिरिक्त ऐलोरा, अजन्ता, खण्डगिरी, पपौरा, मूडवद्री आदि ऐसे स्थान है जहाँ जैनत्व की अति प्राचीनता मुंह बोल रही है।

पुराणो में सर्व प्राचीन 'विष्णु पुराण' बताया गया है। उसमे भी जैन तीर्थंकर सुमतिनाथ (५ वे तीर्थंकर) और जैनधर्म की उत्पत्ति विषयक उल्लेख है। इसमे असुरो को जैनधर्म-रत और 'अहित' कहा है।

भागवत में श्री ऋषभ देव को दिगम्बर मत का प्रतिपादक और आठवाँ अवतार लिखा है। (स्कन्द—५ अ० ३/६)

महाभारत से भी अति प्राचीन रामायण में योग वशिष्ठ के वैराग्य प्रकरण में रामचन्द्रजी कहते हैं—

'नाहं रामो न मे वांछा भावेषु न च मे मनः।
शान्त आसितु मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा॥'

भावार्थ—वहाँ पर रामचन्द्रजी ने जिनेन्द्र पद पाने की इच्छा व्यक्त की है।

वैज्ञानिकों एव इतिहासवेत्ताओ ने यह सिद्ध कर दिया है कि ईसा से दो हजार वर्ष पहले से भी जैनधर्म प्रचलित था।

बौद्ध शास्त्रों मे भी जैनियो का उल्लेख 'निगण्ठ' (निर्गंथ) रूप में बार बार हुआ है। कई जगह अन्य तीर्थंकरों के वर्णन के साथ

नग्न मुनियो का कथन आया है। अतः सिद्ध होता है कि जैन धर्म, बौद्ध धर्म से पूर्व था ही।

इस प्रकार अन्य कई तत्वों के आधार पर जैन धर्म की प्राचीनता झलकती है। इसलिए हम कह सकते है कि जैनधर्म एक पक्षपाती धर्म नही अपितु आत्म धर्म या प्राणी मात्र का समीचीन धर्म है।

# जैन धर्म का महान सिद्धांत

## अहिसा

अहिसा ही परम धर्म है।
अहिसा ही परम अर्हम है।
अहिसा ही सुख शान्ति देने वाली है।
अहिसा ही संसार की रक्षा करने वाली है।
अहिसा ही मानव का सच्चा धर्म है।
अहिसा ही वीरो का बाना है।
अहिसा ही धीरो की निशानी है।
अहिसा मानवी है, हिंसा दानवी है।

ससार का प्रत्येक प्राणी सुख की अभिलाषा करता है। कोई भी प्राणी कष्ट, पीडा, वेदन नही चाहता। कोई भी प्राणी प्राण-घात नही चाहता दुखी प्राणी भी जीवित रहना चाहता है। सबको अपना जीवन अति प्रिय है।

प्रश्न यह उभर सकता है कि जब ससार के प्रत्येक प्राणी सुख चाहते है तो दु.ख क्यो पा रहे है ?

इसका सीधा सरल उत्तर यह सामने आता है कि सुख मिलेगा सुख देने पर ! यदि हम किसी अन्य को पीड़ा नही पहुँचायेंगे, दु.ख नही देंगे, घात नही करेगे, सतायेगे नही, तो हमे दुःख देगा कौन ? अर्थात् कोई नही।

अतः सिद्ध यह हुआ कि सुख चाहने वाले को सुख का कार्य करना चाहिये। किन्तु हमारे कार्य हो दुःख प्रसारण के और सुख चाहे तो

यह भी भला कभी हो सकता है ? अर्थात् कभी नही हो सकता। क्योंकि—

"यादृशं क्रियते कर्म, तादृशं प्राप्तये फलम्"

—जिसने जैसा कर्म किया है, वैसा ही उसका फल उसे प्राप्त होगा।

जैन धर्म का प्राण–सिद्धान्त अहिंसा है। अर्थात् हिंसा न करना। हिंसा कहते हैं अशुभ कार्यो को। अशुभ विचारो को।

अशुभ भाव काम, क्रोध, क्षोभ, माया, मानादि होते है। अशुभ कार्य चोरी, झूंठ, व्यभिचार, प्राणघात, शिकार, मॉस, भक्षण, परिगृह व तृष्णा आदि होते है।

जैनधर्म, सर्व प्रथम यही घोषणा करके आवाह्न करता है कि जीयो और जीने दो। रहो और रहने दो।

किन्तु दुःख तो इस बात का है कि आज का इन्द्रिय लोलुपी, भौतिक की चकाचौध में चुंधिया गया मानव हिंसा का सहवास करके भी शान्ति चाहता है। कहाँ मिल सकती है भला–उसे शान्ति ? ? ?

ज्ञानार्णव में आचार्य शुभ चन्द्र ने कहा है—

"अहिंसवै जगन्माताऽहिंसैवानन्द पद्धतिः।
अहिंसैव गति, साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती॥"

अर्थात्—अहिसा ही जगत की माता है, अहिसा ही आनन्द पद्धति है। अहिंसा ही श्रेष्ठ गति है, और अहिसा ही शाश्वतिक है।

मात्र दूसरों का अहित करना–सोचना ही अपना अहित करना है। दूसरों की हिसा करने से पहले वह अपनी हिंसा कर बैठता है। अर्थात् अपने भावों को विकृत बनाकर स्वयं की दृष्टि मे स्वयं गिर जाता है।

अपने आप को हिन्दु कहने वाले, भगवान राम, कृष्ण, शंकर के उपासक बनने वाले कहने मे जरा भी नहीं हिचकते कि वेद मे वर्णित

हिंसा, हिंसा नही होती । धर्म के नाम पर की गई हिंसा, हिंसा नही होती ।

धर्म के नाम पर हम कुछ भी करे सब क्षमा-योग्य है । क्योकि "वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति ।" और ऐसा मानकर वे देवी की ओट मे बलि चढा देते है । मूक, निर्दोष भैंसे, बकरे, मेढ़े, आदि को तड़पा तड़पा कर काट डालते है । ओफ ! ! !

यह कितना अयोग्य और अमानवीय कार्य है कितनी मानवीय विडम्बना है ? कितनी अज्ञानता है ?

हम पूछते है कि इनके किस भागवत मे, किस रामायण मे, किस पुराण मे, किस बाइबिल मे, किस कुरान मे लिखा है कि जीवो की बलि दो ? ? ?

अरे धर्म की ओट लेकर अन्याय करना कहाँ की समझ है ? कहाँ की इन्सानियत है ? कहाँ का ज्ञान है ?

अन्य स्थाने कृतपाप, धर्मास्थाने विनश्यति ।
धर्म स्थाने कृत पाप, वज्रलेखो भविष्यति ।।

विचारो ! ओ मानवो विचारो !

अन्य स्थान पर किया हुआ पाप धर्म स्थान पर जाने से नष्ट कर दिया जाता है, पर धर्म स्थान पर किया हुआ पाप कहाँ नष्ट कर सकोगे ? ? ?

आओ ! और खोलो रामायण के पृष्ठ और देखो सुन्दर काण्ड ३६-४१ पर—

"न मास राघवो भुक्ते, न चैव मधु सेवते ।
वन्य सुविहित नित्य भक्त मश्नाति केवलम् ।।"

स्वय रामचन्द्र जी भी ना मास भक्षण करते थे, और ना मधु (शहद) का ही सेवन करते थे । वे तो केवल भलि भाति स्वच्छ किये हुये चावल खाते थे ।

नारायण श्री कृष्ण जी ने भी कहा है—

'यावन्ति पशु रोमाणि पशुगात्रेषु भारतः।
तावद्वर्ष सहस्त्राणी पच्यण्ते पक्षु घातकाः ॥'

अर्थात्—पशु के शरीर मे जितने रोम है उतने हजार वर्ष तक पशुघातक (हिंसा करने वाला) नरक मे दुःख अवश्य भोगेगा।

मनुस्मृति मे पांचवे अध्याय के ४४ से ४६ के श्लोको मे कहा है—'प्राणियो की हिसा किये बिना मास की उत्पत्ति नही और प्राणी-वध स्वर्ग सुख को देने वाला नही। इस लिये सर्व मास के भक्षण से निवृत्ति हो कर किसी भी जीव को नहीं सताना चाहिए।

मनुस्मृति के ही इसी अध्याय के ५३, ५४, ५५ श्लोको को देखिये।

"वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतसमाः ॥
मासानि न च खादेद् यस्तमो पुण्य फलं समम् ॥ ॥५३॥

अर्थात्—प्रत्येक वर्ष मे एक पुरुष सौ वर्ष तक यज्ञ करे और दूसरा पुरुष बिल्कुल माँस न खाए, दोनों का फल समान है।

महाभारत के २६५ वें अध्याय मे लिखा है—

'सुरां मत्स्यान् मधुमास मासव कृप रोदनम्।
धूर्तः प्रवर्तितं ह्यतेत् नैतद् वेदेषु कल्पितम् ॥

भावार्थ—मदिरापान, मछली का भोजन, भास भोजन, अपवित्र भोजन, मे सब धूर्तो (मांसो लोलुपियो) से ही कल्पित हुआ है, किन्तु वेद कल्पित नही।

संत कबीरदास जी ने भी कहा है—

मांस अहारी मानई प्रत्यक्ष राक्षस जान।
ताकी संगति मति करै, होई भक्ति मे हान ॥
मास खाय ते ढ़ेड सव मद्यपीवै सो नीच।
कुलकी दुर्मति पर हरै, राम कहे सो ऊँच ॥
मास मछलिया खात है, सुरापान से हेत।
ते नर नरकै जाहिगे, माता पिता समेत ॥

तिलभर मछली खाय के कोटि गऊ दै दान।
काशी करवट लै मरे, तो भी नरक निदान॥
मुसलमान मारे करद, सो हिन्दु मारे तरवार।
कहै कबीर दोनो मिलि जहि है यम के द्वार॥

ईसामसीह को जब क्रास पर चढा दिया गया तो उसने यही कहा—

'ओ परमात्मा! इनको क्षमा करना। क्योकि ये नही जानते कि ये क्या कर रहे हैं।"

इतने दयालु ईसा, बतलाइये यह कैसे कह सकते है कि जीवो को मारो, सताओ, काटो, आदि।

कुरान मे मुहम्मद साहब ने साफ कहा है—

"ए बन्दो! खून का कतरा भी मत बहाओ। अल्लाह सबको करम देता है। सब पर रहम करो। सब अल्लाह के प्यारे है।"

हिंसा करने से ही हिसा नही होती वरन् मात्र हिसा का विचार करने से भी हिंसा हो जाती है। अतः सदैव अहिसक को पवित्र विचार रखना श्रेयकर है।

एक बार किसी राजर्षि ने वीतरागी परम दिगम्बर मुनि से प्रश्न किया······

जले जन्तुः स्थले जन्तु आकाशे जन्तुरेव च।
जन्तु माला कुले लोके कथ भिक्षुर हिंसकः॥

अर्थात्—जल मे जीव, पृथ्वी पर जीव, आकाश में जीव भरे हुये हैं। लोक ही जीवो से व्याप्त है ऐसी स्थिति मे साधु अहिसक कैसे रह सकता है?

इस प्रश्न का निराकरण करते हुए भी वीतरागी साधु ने कहा—

अघ्न न्नपि भवेत्पापी, निघ्न न्नपि न पापभाक्।
परिणाम विशेपेण यथा धीवर-कर्षकौ॥

भावार्थ—मछली मारने वाला धीवर प्रातः से सायंकाल तक नदी मे जाल डाले मछली आने की प्रतीक्षा मे बैठा रहता है और प्रत्येक क्षण मछली फँसाने की बात सोचता रहता है। पर शाम तक भी उसके जाल में एक मछली नही आती। तब भी वह मछियारा हिंसा का भागी ही है। क्योंकि परिणामों मे हिंसा भरी हुई है।

इसके विपरीत एक किसान प्राणरक्षण मे हेतुभूत कार्य के निमित्त से हल चलाता है उसमे जीवो का घात भी हो सकता है। लेकिन वह किसान हिसा का भागी नही होता। क्योकि उसके परिणामो मे रक्षण के भाव भरे हुए हैं।

अतः हिसा को गहराई से सोचना समझना चाहिए। हिंसा और अहिंसा की गहराई तक पहुँचना चाहिए। जब तक प्राणी के मन मे धर्म के भाव है तक तक वह मारने वालो को भी नही मारता इस बात को आचार्य गुणभद्र जी ने आत्मानुशासन ग्रन्थ मे इस प्रकार कहा है:—

धर्मो वसेन्मनसि यावदलं स तावद्—
हन्ता न हन्तुरपि पश्य गतेऽथितस्मिन्।
दृष्टा परस्पर हति जनकात्मजानाम्,
रक्षा ततोस्य जगतः खलु धर्म एव ॥२६॥

... जब तक मनुष्य के मन मे धर्म रहता है तब तक वह मारने वालों को भी नही मारता किन्तु देखो जब धर्म उसके दिल और दिमाग से निकल जाता है तब औरो की कौन कहे प्रिय पुत्र को पिता मार डालता है और पिता को पुत्र मार डालता है। अतः यह निश्चित है कि इस विश्व की रक्षा का मूल कारण धर्म है और वह धर्म अहिंसा-मय है।

अहिंसा आत्मा का सहज व प्रांजल धर्म है। और यह धर्म सत्य आदि से व्याप्त है इसलिए कहा है—

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

सत्य बोलो, पर प्रिय बोलो ! अप्रिय मत बोलो ।

हिंसा मन से भी होती है, वचन से भी होती हैं और काय से भी होती है। वैसे ही अहिंसा भी मन से भी होती है, वचन से भी होती और काय से भी। मात्र उपयोग करने मे अन्तर है।

एक प्रश्न पुनः उभर आता है कि यदि दया, दया ही करते रहे अर्थात् किसी को भी मत सतावो, मत मारो, मत दुखित करो ... तो राष्ट्र, जाति, धर्म रक्षा विद्रोहियो से कैसे की जा सकती है ।

अहिंसक को तो आख मीच कर बैठ जाना चाहिए । क्योकि यदि वह कुछ भी विरोध करेगा तो कषाय, क्रोधादि उत्पन्न होगे फिर हथियार आदि का प्रयोग करेगा, तब उससे स्वतः ही हिंसा हो जायेगी

प्रश्न तो उचित है पर हिंसा और अहिंसा की गहराई मे उतरे बिना किया गया प्रश्न है। जिन भावो मे विचारो मे, रक्षण के भाव होते है, कर्त्तव्य की भूमिका होती है वह हिंसा नही हो सकती, और कटु व मारने काटने सताने के भाव होते हुए भी हिंसा न कर सका तो हिंसा हो जाती है। यह हमने पीछे भी कहा है।

पुनः हम इसका आगमानुकूल विश्लेषण करते हैं ।

हिंसा चार तरह से होती है। यथा—

(१) आरम्भी । (भोजन आदि बनाना)

(२) उद्योगी। (व्यापार आदि करना)

(३) विरोधी । (रक्षा के भाव से विरोध करना)

(४) संकल्पी । (इरादा करके हिंसा करना)

एक गृहस्थ या एक नागरिक, या एक सच्चा देशभक्त, धर्म भक्त या जाति भक्त, सभी के हित के विचार अपने दिल मे संजोए रहता है। वह यह कदापि नही चाहेगा कि अमुक का नाश हो जाय ।

गृहस्थ उपरोक्त चार प्रकार की हिंसा मे से आरम्भी, उद्योगी व विरोधी हिंसा से मुक्त नही हो सकता । अर्थात् उसे भोजन पानी बर्तन, चौका बुहारी आदि करना पडता है। परिवार एव राष्ट्र की

रक्षा के लिए भरण पोषण हेतु व्यापार, कृषि, आदि करना पड़ता है और जब राष्ट्र पर धर्म पर, जाति पर आपत्ति आ जाती है तो उसे उन सबकी रक्षार्थ विरोध भी करना पड़ता है। और यह सब उसके लिए हिंसा नही होती। क्योकि उसके विचारो मे हिसक भाव नही वरन् रक्षा के भाव है।

सन् १९७१ के पाक भारत युद्ध मे प्रधान मत्री श्रीमतिइन्दिरा गाधी और थल सेनाध्यक्ष जनरल मानकशा ने यह दिखा दिया है कि युद्ध करते हुए भी भावो मे मार डालना, नष्ट कर देना कदापि नही था। बंगला देश को जालिमों से बचाने के लिए असहाय अबलाओ की इज्जत बचाने के लिए तड़पते हुए बिलखते हुए अबोध बच्चो को ध्यान मे रखते हुए जालिमों के प्रहार से सौभाग्य-वतियो के सौभाग्य लुटते हुए को बचाने के लिए और राष्ट्र की रक्षा का पूर्ण ध्यान रखते हुए इन्होने युद्ध छेडा। पर फिर भी बार बार चेतावनी देते रहे कि हथियार डाल दो और हिंसा से बचो।

फलतः अहिंसा से ओतप्रोत प्रधान मत्री और जनरल मानकशा के विचारो के फलस्वरुप पाक-जालिमो ने हथियार डाल दिए। हथियार डाल देने पर उन्हे मारा नही गया, पीटा नही गया, सताया नही, पर उनकी भी रक्षा की गई।

तो जैन धर्म की यह अहिंसा बताती है कि अहिसक कभी भी कायर नही होता। वह तो वीर होता है। कायर तो अहिंसा का पालन कर ही नही सकता।

भावो मे दया का होना अहिंसा है। स्व-पर की दया ही अहिंसा है। कहा भी है—

दया मूलो भवेदधर्मो दया प्राणानुकम्पनम्।
दयाया परिरक्षार्थं गुणाःशेषाः प्रकीर्तिता॥

रही बात अब संकल्पी हिंसा की। तो सकल्पी हिंसा ही महान हिंसा है। अर्थात् इरादा करके सकल्प करके, भावो को मलिन करके

किसी को मारना पीटना सताना नष्ट करना यह सब संकल्पी हिंसा है। और गृहस्थ इसका त्याग आराम से कर सकता है। उसे करना भी चाहिए।

अब यदि कोई यह दलील दे कि भरण पोषण के लिए व्यापारादिक के लिए मछली मारना अंडे रखना उचित ही है तो यह उनकी अज्ञान पूर्वक सूझ बूझ है। मछली आदि जीवो से किसी का भी भरण पोषण न हुआ है और ना होगा। हा बुद्धि अवश्य भ्रष्ट हो जायगी।

कोई भी पुराण, वेद, कुरान, बाइबल, यह आज्ञा नही देता कि तुम अमुक जीवो को खाकर भरण पोषण करो। या बेचकर व्यापार करो।

अरे! प्राकृतिक वस्तुएं ही ऐसी ऐसी है जिनसे भरण पोषण हो सकता है। चावल अन्न दूध पानी सब जगह यथा विधि उपलब्ध है फिर इन मूक जीवो को मारने से क्या होगा ?

आज वैज्ञानिको ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि मानव का भोजन मासादि अनिष्ट पदार्थ नहीं अपितु अन्नादि पदार्थ हैं क्योकि प्रोटीनतत्व जितना अन्न व दूध चावल मे है उतना मांसादि मे नहीं।

अत. अहिंसा सार्वभौमिक विश्व धर्म है। जो जैनाचार का प्राण-धर्म है। अहिसा न अव्यवहार्य है, न कायरता और न निर्बलता की जननी है। उसकी मर्यादा, व्याख्या और शक्ति से जो परिचित है वह ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकता।

अहिसा परमो धर्म:

## जैनदर्शन के अन्य महत्वपूर्ण तत्वों से पूर्ण तथ्यः—

त्रैकाल्य, द्रव्यषट्कं, नवपदसहितं,
जीव षट् काय लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्ति काया वृत. समिति—

गति-ज्ञान-चारित्र भैदाः ।। तत्वार्थ सूत्र ।।

कालतीन···भूतकाल, वर्तमान काल, भविष्यत् काल ।

द्रव्य छह···(१) जीव···चेतनमय, उपयोगमय ।

(२) अजीव···चेतनारहित, जड़ पदार्थ ।

पुद्गल ··स्पर्श, रस, गन्ध वर्ण सहित पदार्थ ।

३ धर्म द्रव्य···जीव व पुद्गल को गमन मे सहकारी ।

४ अधर्म द्रव्य···जीव व पुद्गल को रोकने मे सहकारी ।

५ आकाश द्रव्य···जीव व पुद्गल को अवकाश (स्थान) देने वाला ।

६ काल द्रव्य···जीव व पुद्गल को परिवर्तन करने वाला ।

पदार्थ नौ···जीव (उपरोक्त)

अजीव (उपरोक्त)

आश्रव (कर्म आना)

बध (कर्म आत्म प्रदेश से बन्ध जाना)

संवर··· (आते हुए कर्म को रोकना)

निर्जरा··· (बन्धे हुए कर्म को काटना)

मोक्ष··· (कर्म विमुक्त अवस्था)

पुण्य (शुभ कार्य)

पाप (अशुभ कार्य)

छह काय के जीव···एकेन्द्रिय (पेड पौधे,पर्वत, अग्नि, ओले,वायु)

दो इन्द्रिय (लट, शख,जू, जोंक आदि)

तीन इन्द्रिय (चिंवटी, कीड़ा आदि)

चौ-इन्द्रिय (मक्खी, मच्छर, भौंरा आदि)

पचेन्द्रिय (मनुष्य, गाय, बैल,भैंस,पक्षी आदि)

पचेन्द्रिय जीव दो तरह के होते है—

१—सैनी (जिनके मन हो ...सातो नरक वाले, तीन प्रकार के तिर्यंच, चार प्रकार के देव, और दो प्रकार के मनुष्य)

२—असैनी (जिनके मन न हो...कोई कोई तोता और पानी के सर्प)

छह लेश्या...कृष्ण लेश्या (अत्यन्त तीव्र कपाय व पाप कराने वाली भावनाएं)

नील ,, (तीव्र कपाय पाप कराने वाली भावनाए)

कापोत ,, (सामान्य कपाय व पाप करने वाली भावनाए)

पीत ,, (सरल परिणाम उत्पन्न करने वाली भावनाए)

पद्म ,, (पवित्रता, धैर्य, व शौर्य उत्पन्न कराने वाली भावनाए)

शुक्ल ,, तप, त्याग, वीतराग रूप भाव उत्पन्न कराने वाले भाव)

व्रतपाच...अहिंसा (दया भाव)

सत्य (झूठ न बोलना)

अचौर्य (चोरी न करना)

ब्रह्मचर्य (शील का पालन करना)

अपरिग्रह (तृष्णा की आग से बचना)

समिति पांच...ईर्या (प्रकाश मे और देखभाल कर चलना)

भापा (हितमित प्रिय वचन बोलना)

ऐपरणा (शुद्ध व नियम पूर्वक भोजन करना)

आदान निक्षेपरण (वस्तु को रखते व उठाते वक्त जीव रक्षा का ध्यान रखना)

उत्सर्ग (मलमूत्रादि क्षेपरण करते वक्त जीवादि की रक्षा का ध्यान रखना।

गति पाँच १ मनुष्य (पृथ्वी पर)

२ नरक (पृथ्वी के नीचे ७)

३ तिर्यन्च (मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी)

४ देव (पृथ्वी के ऊपर १६)

५ मोक्ष (स्वर्ग के भी ऊपर)

ज्ञान पांच······

१ मति ज्ञान (मन व इन्द्रियो की सहायता से उत्पन्न हुआ ज्ञान)

२ श्रुति ज्ञान (मतिज्ञान द्वारा प्राप्त हुए ज्ञान को विशेष पूर्वक जानना)

३ अवधि ज्ञान (मर्यादा पूर्वक रूपी पदार्थो को स्पष्ट भूतकाल व भविष्यत्काल सहित जान लेना)

४ मन: पर्यय ज्ञान (दूसरे के मन की वात को स्पष्ट जान लेना)

५ केवल ज्ञान (त्रिकाल वर्त्ती समस्त पदार्थो को और पर्यायो को स्पष्ट एक साथ जानना)

चारित्र पाच······

१ सामायिक

२ छेदोपस्थापना

३ परिहार विशुद्धि

४ सूक्ष्म सापराय

५ यथाख्यात

# साँसारिक तथ्य

जैनदर्शन बताता है कि ससार एक क्षणभगुर, स्वप्नवत् चक्र है जिसमे मानव मोह कर बैठता है और हाथ कुछ नही लगता। उसे यह मालूम तो है कि खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही जाता है, पर शायद यह नही मालूम कि संस्कार लेकर आता है। और संस्कार लेकर जाता है। अब वे संस्कार शुभ भी हो सकते हैं और अशुभ भी।

यह उस मानव की अपनी हैसियत है कि वह कैसे सस्कार को लेकर कूच कर रहा है।

सस्कारो के रहस्य को समझने का समय युवावस्था है। वृद्धावस्था तो मात्र पश्चाताप का समय रह जाता है।

यदि युवावस्था मे मानव को होश रहता है तो वह विवेक पूर्वक अपना मानव जीवन सफल कर सकता है और यदि यौवन की आधी मे अन्धा होकर मदहोश हो चुका है तो फिर वृद्धावस्था मे सिवा पश्चाताप के कुछ हाथ नही लगता।

चालीस वर्ष की अवस्था तक ही व्यक्ति अपना भला बुरा कर सकता है। बुरा करने को तो आगे भी कर सकता है पर भला करने के लिये आगे का समय उसके लिये नही के बराबर रह जाता है।

त्याग, तप, सयम, शुद्धसस्कार आदि को अवधारण करने का समय ४० वर्ष की आयु तक ही उचित माना गया है।

मानव के सामने तीन वस्तु आती हैं।

जर (दौलत)

जोरु (पत्नी)

जमीन (सम्पत्ति)

यदि मानव इनमे फस गया तो समझो कि गया काम से। और इनको पाकर अपना व पर का हित करता रहा तो समझो कि उसने बहुत कुछ पा लिया है।

भोग तो रोग का जन्मदाता है। हाथ कुछ नही आता। भोगों का मजा तो मात्र छलावा भरी कजा है। यह वात वे लोग अच्छी तरह जानते है। जिन्होंने भोगासक्ति करके पश्चाताप की आग प्राप्त करली है।

साँसारिक वैभव पाकर यदि विवेक को सम्हालकर रख रखा है तो साँसारिक वैभव व्यक्ति का कुछ नही विगाड सकते। और यदि विवेक को एक कोने मे चुप रहने को वैठा दिया गया तो उसका पतन अवश्यम्भावी होता है।

'इसका फैसला हो ही जाना चाहिए।'

'अरे ! जा…रहने दे। कौन करेगा इसका फैसला ! किसमे है इतनी हिम्मत ?'

'ऐसी वात नही, ससार मे ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी। ज्ञानी होने का ठेका तुम ही अपने आपमे मत समझो।'

'ज्ञानी करेगा क्या इसमे ? आज सारा विश्व मेरा गुलाम है। मेरे थोड़े से फुदकने से राष्ट्र राष्ट्र से भिड़ सकता है। पिता पुत्र को मार सकता है। समझे ?'

'यह तेरा कोरा अह भाव है। यही सत्य हो, मैं इसे नही मान सकता। यदि तुझे पाकर कोई इस प्रकार का उत्पात करता है तो समझो उसके पास 'मैं' नही हूँ।'

'यह वात है ?'

'मैं तो ऐसा ही समझता हूँ।'

'तो फिर हो जाय फैसला।'

'यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ।'

'अच्छा तो चलो…।'

'लेकिन ऐसे नही…।'

'तो फिर कैसे ?'

'रूप बदल कर ! मैं साधु बनता हूँ और तू वेश्या बनजा ।'

'चलो, यह भी मन्जूर है ।'

और दोनो चल पडे, फैसला करवाने । आप पूछेंगे कौन थे ये दोनो ? तो आपको बताए देते है कि उन दोनो मे से एक 'विवेक' और दूसरा था 'पैसा' । पैसा अकड़ कर बात करता था और विवेक नम्रता से । पैसा का अहं ठिकाने बैठाने की गर्ज से ही विवेक ने कहा था—

'इसका फैसला हो ही जाना चाहिए ।' क्योकि 'पैसा' बार बार कहता था कि मैं ही बडा हूँ और सारा विश्व मेरे आधार पर ही है। जबकि 'विवेक' कहता रहा कि तुम बडे मात्र विवेक के साथ ही रह सकते हो, अन्यथा पतन के कारण हो ।

लिहाजा फैसला कराने के लिये विवेक साधु बना और पैसा वेश्या । दोनो चल निकले ।

एक अच्छी विशाल हवेली को देखकर वेश्या बोली—चलो यहाँ, इस हवेली के मालिक से फैसला करा लिया जाय । दोनो अन्दर पहुँचे । हवेली का प्रत्येक कमरा देखा—एक मे अर्ध नग्न नारी नृत्य कर रही थी और शराब का दौर चल रहा था । एक कमरे मे जलपान का इन्तजाम था जिसमें अण्डे, मांस, आदि भी रखे थे । एक कमरे मे वही मालिक अपनी पत्नी को पीट रहा था क्योकि वह उसके साथ शराब नही पी रही थी ।

पैसा अकड कर चल रहा था । विवेक का दम घुट रहा था । ······अन्त मे विवेक ने कहा—"कराओ ना फैसला ।"

पैसा बोला—"फैसला ही फैसला है । देखो अपनी आखो से, यहां मेरा ही बोलबाला है । तुम्हारा तो नामोनिशान भी नही । पैसा वाले थोथी बातों के लिये समय नही रखते । क्या समझे ? ? ?"

विवेक ने कहा—"समय क्या नही रखते, यो कहो ना कि

विवेक नही रखते । चलो···दूसरी जगह चले ।"

दोनों हवेली से वाहर निकले । आगे वढे । एक साधारण से साफ स्वच्छ मकान को देखकर विवेक ने कहा······

"चलो शायद यही, इस मकान में ही, हमारा फैसला हो जाय ।"

पैसा नाक मुंह वनाकर बोल उठा—"छी, छी—यहाँ क्या फैसला होगा ।"

"चलो तो सही ।"

'अच्छा चलो ।'

दोनों अन्दर पहुँचे । एक चारपाई पर पति पत्नी वैठे वाते कर रहे थे । साधु और वैश्या को सामने देखकर उठ खड़े हुये । आसन बिछाये । साधु लकड़ी की चौकी पर वैठ गया और वेश्या कुर्सी पर ।

साधु भी चुप था । वैश्या भी चुप थी । उधर पति पत्नी हैरान थे कि क्या बात की जाय । वेश्या ने देखा—मकान छोटा है पर है वहुत साफ । वैभव ज्यादा नही है पर ·········तभी पति ने साधु से पूछ लिया······

'महाराज आपके चेहरे पर काला दाग क्यो ?'

विवेक ने चौकते हुये कहा ·····'नही तो ······नहीं तो······ कहाँ है काला दाग ?'

तभी पत्नी ने वेश्या से प्रश्न किया—'देवी ! इतनी सुकुमार अवस्था मे भी तुम्हारे सिर मे इतने सफेद वाल क्यो ?'

पैसा भी चौका······ वोला····· 'नही ! नहीं ! नही ! कहाँ है मेरे सफेद वाल ?'

तभी पति पत्नी हंस पड़े । वोले 'अपराध क्षमा हो········· वताइये आप कौन हैं ? क्योंकि आप न साधु है और ना आप वैश्या ?

पहले पैसा चौका 'अरे ? ? ?'······

फिर विवेक ने मुस्करा कर कहा···—वताओ वताओ·········

कौन हैं हम ? —अच्छा, एक प्रश्न का उत्तर दो……यह बताओ कि पैसा बडा या विवेक ।'

पति ने मुस्कराते हुए नीची नजरों से जवाब दिया……

'महाराज ! पैसा का क्या बडा ? पैसा का बडापन तो विवेक के साथ है पैसा हो और विवेक न हो तो पैसा तो नष्ट होगा । पर वह पैसे वाले को भी नष्ट कर देगा । और यदि पैसा न हो और विवेक ही तो, पैसा तो दौड कर चरणो में आ गिरेगा । इसलिये महाराज विवेक ही बडा है और पूज्य ।'

पैसा (वेश्या रूप मे) चुप था और रो रहा था । पश्चाताप की आग मे जल रहा था । हाय ! मे भी कितना भाग्य हीन हूँ कि यहाँ मुझे हार खानी पडी ।

विवेक ने पैसा का पश्चाताप जानलिया—बोला…… 'घबराओ नही, बिना विवेक के पैसा होता ही बुरा है ।"

'पर महाराज आप दोनो कौन है ?' पति ने पुनः पूछा । 'क्या तुमको हमारे इस रूप मे शक है ?' पैसा बीच मे ही बोल उठा ।

'हाँ ! क्योकि साधु और वैश्या दोनो एक साथ नही रह सकते । हमने विवेक पूर्वक आप की पहिचान कर ली थी । अब बताइये कि आप………'

'मै विवेक हूँ और यह पैसा है ।"

दोनो पति पत्नी विवेक के चरणो मे झुक गए । पैसा तीनो के चरणो मे झुका हुआ था ।

साराश यह है कि मानव को विवेक पूर्वक स्व-पर का भान करना चाहिए और आत्म हित के मार्ग पर सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक्चरित्र पूर्वक लगना चाहिए । क्योकि……

सम्यक्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग. ॥

## उपसंहार

त्रैलोक्य-मण्डप पर प्राणी जन्म लेता है और मरण को प्राप्त

होता है। इस प्रकार जन्म मरण का चक्कर अनादि से चलता आ रहा है और चलता रहेगा। यह जन्म मरण का क्या चक्कर है ? ... इसे उन महान् आत्माओं ने पहचाना है ... जिन्होने आत्म तत्व को पहचानने का प्रयास किया है।

सांसारिक आत्मा ही सिद्ध आत्मा बनती है। सिद्ध बनने वाली आत्मा भी आप जैसी हम जैसी ही होती है। मात्र उनमे और हममे अन्तर है तो इतना कि उन्होने ससार में से सार निकाल कर-अपनी कलुषित आत्मा को सम्यक् जल से धोकर—परमात्मा तत्व को समझा है, जाना है, और अवधारण किया है। किन्तु हमने ससार में से सार न निकालकर-उल्टे ससार मे ही अपने आपको मिलाया है। ना आत्म तत्व को समझा और ना जाना। अतः वे विमुक्त होगए और हम विषयकषायानुरक्त हो गए।

तीर्थंकर कहो या अवतार, पैगम्बर कहो या परमेश्वर। जिसने भी जिस विशेषण का उपयोग किया है उसी ने अपने अवतार मे या अपने तीर्थंकर मे यही विशेषता पाई है कि—

—वह प्राणी मात्र का हितकारी है।

—वह महान ज्ञानी है।

—वह कृतकृत्य है।

—वह महान आत्मा है।

—वह दुष्टदलन एवं सुख सृजनहार है।

—वह सच्चा उपदेशक है।

और

वही पूज्य है। परमात्मा है। ईश्वर है।

सिद्धान्तो मे किसी भी सम्प्रदाय मे कोई भेद नही रहा। भेद मात्र मान्यता में रहा है। भेद मात्र क्रियाओ में रहा है। जिनको जिस क्रिया में सहुलियत मिली उसने वही अपना ली या उसी का प्रचार कर डाला।

जैसे जैसे समय का चक्र बदला वैसे वैसे मानव भी बदला, मानव के विचार बदले और मानव की क्रियाऐं भी बदली । पर मानवीय सिद्धान्त न बदले, न बदलेगे । अब मानव अपने मानवीय सिद्धान्त अपनाता है या नही यह उसके अपने आचरणो पर निर्भर करता है ।

जो मानव परिस्थितियो का गुलाम बनगया वह अपने आप को सम्हाल न सका और जिसने परिस्थितियो को अपना गुलाम बना लिया वह मानव-महान हो गया ।

भगवान शान्तिनाथ भी सामान्य पुरुष ही थे । कर्म सिद्धान्त के अनुसार वे अपने साथ विपुल पुण्य को साथ लेकर जन्मे थे । अतः सामान्य होते हुए भी अनेक विशेषताओ से परिपूर्ण थे ।

जन्म से ही अनेक विशेषताओ से पूर्ण होना-यह महानता का ही लक्षण होता है । विशेषताऐ कोई देता नही मानव अपने आप स्वय ही रचता है । जिस प्रकार के कर्म करेगा उसके अनुसार उसके सस्कार होगे । अतः सिद्ध हुआ कि प्राणी के साथ सदैव उसके सस्कार रहते है ।

भगवान शान्तिनाथ अपने साथ स्वच्छ और श्रेष्ठ सस्कार लेकर अवतरित हुए थे । तभी तो देवोपुनीत पावन साधन स्वत. उपलब्ध हुए थे ।

सस्कार से ही सस्कार बनते है । इस न्याय के अनुसार भगवान शान्तिनाथ ने सदैव अपने आप पर दृष्टि रखी । महान विभूति की उपलब्धि होने पर भी वे उसमे रमे नही । आसक्त नही हुए । परिजन और परिवार के मोह मे भी फसे नही ।

ना उन्हे सत्ता का गर्व था और ना सम्पत्ति का अभिमान । ना उन्हे बल का घमण्ड था और ना अपने रूप का अहकार । क्योकि वे जानते थे कि यह सब क्षणिक है, विनाशीक है, मात्र छलावा है और शारीरिक रचना विशेष है ।

आज सम्प्रदायवाद जोर पकड रहा है जिसमे मानव अपना क्षेत्र

सकुचित कर रहा है। वैसे यदि प्रत्येक सम्प्रदाय मानव को सर्वोच्च पद पर पहुँचाने का कार्य करे तो कुछ अनुचित भी नही। पर जहां खीचातानी का सवाल है वहा सिवा मानव में मानवता के पतन के और कुछ नही।

मानव यह क्यो भूल गया कि वह पहले मानव है, वाद में और कुछ। जन्म से ना कोई सम्प्रदाय विशेष और ना जाति विशेष। भोले-भाले शिशु को इस प्रकार सस्कृत किया जाता है कि वह सम्प्रदायवाद के चौराहे पर खड़ा खड़ा ताकता रहता है।

× × × ×

"आप खड़े खड़े क्या सोच रहे है??

"कौन? मै???

'हॉ! आप! ··· क्या वात है ?"

"वात क्या वताऊं! नया नया जीवन पाया हूँ। संसार-पथ पर अनेक साथी वनने को आगे आगए हैं। कोई कहता है मेरे साथ चलिए मेरा पथ सुगम है दूसरा अपने से पहले का पथ वुरा वताकर स्वय का अच्छा वता रहा है तीसरा अपने पथ को अच्छा वताकर दूसरे को वुरा कह रहा है ······मैं तो असमंजस मे पड गया कि आखिर चलूं तो ··· किसके पथ पर?"

'कौन है वे लोग? जो ऐसा हठ पकड़े हुए है ?"

'यही संसार वाले।"

'तुम उनकी सुनते ही क्यो हो?"

'सुनूं कैसे नहीं, संसार मे जो रहना है मुझे!'

'ओह!······अच्छा वताइये मुझे भी, वे कौन है··· कहाँ है··· और क्या कह रहे है?'

'अवश्य! देखिये···उधर देखिये···वे सव शायद इधर ही आ रहे है!'

'तो ये है वे लोग। ······आने दो उनको यहाँ पर आज उनसे ही उनके पथ का अर्थ सुन कर समझले।'

'वाले कम सलाम!'

'जय शकर!'

'जय नानक!'

'जय ईशु परमेश्वर!'

'बुद्ध शरण गच्छामि।'

'जय साहब।'

सबने अपनी अपनी प्राप्ति के अनुसार नमस्कार किया। मैने भी कहा—'जयजिनेन्द्र।'

'क्या मैं आपका परिचय पूछ सकता हूँ?······' मैंने नम्रता से पूछा। मेरे पूछने पर प्रत्येक ने उत्तर दिया—

"मैं मुसलमान हूँ।"

"और मैं वैष्णव हूँ।"

"मै बौद्ध हूँ।"

जब सबने जाति वा सम्प्रदायगत परिचय दे दिया तो मैंने भी कहा

"मैं जैन हूँ।" ······अच्छा यह बताइये आप सब जीवन मे चाहते क्या है?"

"हम सुख चाहते है।"

"और शायद ऐसा सुख चाहते होगे जो सदैव रहे—कभी नष्ट न हो।"

"जी हाँ! जी हाँ! बिल्कुल वैसा हो।"

"तो क्या आप बता सकते है कि वैसा सुख कहाँ, कब, और कैसे मिल सकता है?"

"जरूर बतायेंगे······सुनिए··········जीवन मे आराम हो, भगवान का नाम हो—और खूब पैसा—सम्पत्ति हो।"

"क्या आप सभी की यही राय है?"

"बिल्कुल यही। क्या आप को कोई आपत्ति है?"

"आपत्ति तो है—पर ना मालूम आप मानेंगे या नहीं। क्योंकि जिसे आप सुख समझते हैं ......... वह तो सुखाभास है—मात्र विद्युत का चमक्का है। मेरी राय मे तो 'सुख उसे कहते हैं जिसमे आत्मा-परमात्म पद पाले? और वह पद आत्मा मे लगे कलुषित कीट कालिमाओं को हटाने से ही मिल सकता है। स्व—पर को समझे। पाप छल कपट को छोडे। सयम पथ पर चले। प्राणीमात्र को अपने समझे और सात्विक भोजन को पाकर सन्तोष से जीवन यापन करे। मोह, ममता क्रोध मानादि को हृदय मे स्थान न दे। सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, और सच्चे आचरण को आत्मा मे स्थान दे। ......... कहिए .......— आपको इसमे कोई आपत्ति है।"

"जी नही! जी नही!"

'एक दूसरे को बुरा बताना, मानवता को साम्प्रदायवाद के कठघरे मे बान्धे रखना, विवेक रहित क्रिया काण्डो मे फंसे रहना, दूसरे को फँसाकर अपना ही उल्लू सीधा करना, सत्ता, धन, व सन्तति का अभिमान करना आदि तो आत्मा को पतन की ओर ले जाते हैं।" 'सत्यतः यही बात है। देखिये मैं मुसलमान हूँ ...... मुहम्मद साहब ने साफ कहा है......"धर्म यह नही है कि तुम अपना मुह पश्चिम की ओर करो या पूर्व की ओर। बल्कि धर्म यह है कि आदमी ईमान रखे। अल्लाह पर भरोसा रखे। ईमान रखे अन्तिम दिन पर, फरिश्तो पर। कुरान की आयतों पर, पैगम्बरों पर। फकीरो की सेवा करे, किसी की गर्दन न उड़ावें, नमाज कायम करे, जकात दे, सन्तोष रखे, और बुरी आदतों से बचे। (कुरान शरीफ २,१७०)"

"मेरी भी यही राय है। मैं ईसाई हूँ...... परमेश्वर यीशु ने बाइबल मे कहा है—प्रभु हम सब मे है। प्रभु का राज्य प्राप्त करने के लिये नम्रता, सन्तोष, और सच्चाई मुख्य साधन हैं। हिंसा का

जवाव अहिंसा से दो। गाली देना उतना ही बुरा है जितना किसी जीव की हत्या करना। (वाइवल २७१)"

"सत्यतः यही वात है। मैं वौद्ध हूँ। भगवान वुद्ध ने भी कहा है—

अत्त दीपा अत्त सरणा-अनन्न सरणा।
धर्म दीपा, धम्म सरना होत महा परिनिब्बाण ॥३॥

अर्थात्—आत्मदीप होकर रहो, अपनी ही शरण जाओ, किसी का सहारा मत ढूँढो, धर्म दीपक है, धर्म शरण है।

न परो पर निकुब्बेथ नाति—
मञ्जेथ कथचित कञ्चि।
कारो सन। पटिघसञ्जा—
नाञ्ज मुज्जस्स दुस्ख ॥

...अर्थात्—कोई किसी को न ठगे, अपमान न करे, विरोध न करे, सुत्तपिटक न करे, एक दूसरे को दुःख न दे।"

मे भी सहमत हूँ। मैं वैष्णव हूँ। वैदिक धर्म को मानता हूँ। मनुस्मृति मे साफ लिखा है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं
शौचमिन्द्रिय निग्रह।
एतत सामासिकं धर्मं
चातुर्वण्येऽब्रवीन्मनुः ॥१०/६३॥

अर्थात्—हिंसा न करना, सच वोलना, चोरी न करना, पवित्र रहना, और इन्द्रियो का संयम करना यही चारो वर्णों के लिए मनु ने धर्म कहा है।"

"वाह! वाह!! क्या वात है? देखिए हमारे गुरू नानकदेव ने भी ऐसा ही कहा है—

ना कोई हिन्दू ना कोई मुसलमान। पवित्रता से जीवन विताओ, सवपर दया करो।

पवरण गुरू वारणी पिता—माता धरन्ति महतु ।
दिवसु राति हुई दाई—दाइआ खैले सगल जगतु ॥
चांगि आइआ वुरि आइआ वाचै धरमु हदूरि ।
करमी आयो आपरणी के नेड़ै के दूरि ॥"

"वेशक !वेशक!! देखिए मैं पारसी हूँ···। हमारे यहां भी कहा है हुमत (सत्य विचार करो) हुखत (सत्य वचन वोलो) । ह्वरश्त । (सत् कर्म करो) "

इस प्रकार सभी ने अग्ने अपने पुराण, वाइवल, कुरान, ग्रन्थ आदि के दृष्टिकोण प्रस्तुत किए । मैंने भी कहा···

देखिए, आप सबके कथन मे और मेरे यानी जैन के कथन मे कोई अन्तर नही है । जैन का भी प्राण सिद्धान्त 'अहिसा'है । वह तो प्राणी की रक्षा के लिए पानी भी छानकर पीने के लिए कहता है। उसने प्राणी को उत्थान पथ पर चलने के लिए कहा है—

उत्तम क्षमा मार्दवार्जव सत्यशौच सयम तप त्याग ।
आकिन्चन्य व्रहमचर्णाणी धर्माः ॥

अतः हम सवका जव सिद्धान्त एक ही है तो फिर कौन बुरा हुआ । कोई भी बुरा नही । और धर्म तो कभी बुरा होता ही नही । पाप ही बुरा हुआ करता है ।

अव अन्तर केवल हमारी क्रियाओं मे रह गया है । सो भी इस-लिए कि सिद्धान्त पर चलना हमने कठिन मान लिया है । अतः समय पर उपलब्ध विद्वानो ने हमारी शिथिलता को देखा विभिन्न मान्यताऐं हमारे आगे प्रस्तुत करके हमें सिद्धान्त से दूर हो जाने का पथ दिखाया ।

मुनि दिगम्बरो ने अपने महानतम एव महान् त्याग से जीवन की सारता—प्रदर्शित की है । जिसका प्रसारण आदि तीर्थंकर भगवान वृषभदेव और अन्य तीर्थंकरो के साथ साथ भगवान शान्तिनाथ ने भी किया था ।

भगवान शान्तिनाथ ने यह बता दिया है कि जीवन का चरम लक्ष्य 'मुक्ति' को कोई भी साधक अपनी साधना के द्वारा प्राप्त कर सकता है। इसमें जाति विशेप या व्यक्ति विशेष का आक्षेप नहीं है। साधना होनी चाहिए निकाक्षित और निष्कलंक।

× × ×

प्रत्येक प्राणी ईश्वर है। उसमे ईश्वरत्त्व है। पर उसका ईश्वरत्त्व उसी के कर्मावरण से दब गया है। छिप गया है। जब कर्मावरण को हटाया जायेगा तो वही ईश्वरत्व चमक उठेगा।

आत्मा से परमात्मा बनने के लिए विशिष्ट क्रियाऐं चाहिए, विशिष्ठ ज्ञान चाहिए और विशिष्ट सम्यक्त्व चाहिए। तभी जाकर आत्मा, परमात्मा बन सकेगी।

छोटे से बीज मे महान् वृक्ष समाया हुआ है। उस छोटे से बीज को विशिष्ट बोध, क्रिया आदि के द्वारा धरती पर डाला जाता है, यथासमय पानी, धूप, खाद आदि उसे दिया जाता है और उसकी पूर्ण निगरानी रखनी होती है—तब वही बीज वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। वैसे आत्मा भी परमात्मा पद प्राप्त कर सकता है।

भगवान शान्तिनाथ के पश्चात् क्रमशः कुन्थुनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ,नमिनाथ, नेमीनाथ, पारसनाथ और महावीर स्वामी हुए हैं। सभी ने एक ही सिद्धान्त का प्रति पादन किया है। सिद्धान्त ना कभी बदला था और न बदला है। हाँ कथन समयानुकूल हो सकता है।

हमारी आत्मा परमात्मा क्यो नहीं बनी ?:—इसका समाधान मुनि विद्यानन्द जी ने अपने 'अभीक्षण ज्ञानोपयोग' उपदेश मे सुन्दरता से किया है कि—आत्मा, अज्ञान के अन्धकार मे रही है। उसे ज्ञान का आलोक मिला ही नही। अज्ञान का आवरण रहते मनुष्य किसी भी तत्त्व को जानेगा कैसे ?

अज्ञान अन्धकार मे चलने वाले को कूप, वापी, तड़ाग दीखेंगे कैसे ? विषधर नाग पर उसका पाव भी रखा जा सकता है । उसे पथ न सूझने के कारण के वह पथच्युत भी हो सकता है । भावार्थ—उसे अपने उत्थान का पथ मिल ही नही सकता ।

इसके विपरीत जिसके पास ज्ञान का दीपक है वह सुखपूर्वक पथवर्ती कील कण्टकों से अपनी सुरक्षा करते हुये अपने गन्तव्य ध्रुव को सहज ही प्राप्त कर लेता है ।'

अज्ञानता से ही मनुष्य सांसारिक साधनो में उलझ जाता है । वह उन्हे ही अपना मान वैठता है, जबकि सांसारिक प्रसाधन आत्मा से भिन्न है ।

यदि ज्ञानवान् और अज्ञ व्यक्तियो की क्रियाये समान है, उनमे ज्ञान ने अवरता और प्रवरता की भेद रेखाये प्रसूत नही की तो वह अनियोजित ज्ञान है ।

हेयोपादेय को जानकर यदि उन्हे अंगुलिपर्वों पर गिन देता है तो उसे 'ज्ञानखचूसी' कहना संगत होगा । ज्ञान के नाम से आकाश की ओर मुंह उठाकर तारे गिनने वाले निरे ज्ञानखचूसी नहीं तो क्या है ?

ज्ञानार्जन का अभिप्राय है तन्मय होजाना । जब अग्नि और उष्णता के समान ज्ञान और ज्ञानी में एकीभाव हो तब ज्ञान चरितार्थ समझना चाहिये ।'

मुनि श्री विद्यानन्द जी ने आगे और कहा है कि ज्ञान की पिपासा कभी शान्त नही होती । ज्ञान प्रतिक्षण नूतन है । वह कभी जीर्ण या पुराना नही पड़ता । स्वाध्याय, चिन्तन, तप, संयम, ब्रह्मचर्य आदि उपायों से ज्ञान निधि को प्राप्त किया जाता है । जो चिन्तन के समुद्र को पी जाते हैं, स्वाध्याय की सुधा का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं, संयम पर सुमेरु के समान अचल स्थिर रहते हैं, वे ज्ञान प्रसाद के अधिकारी होते हैं ज्ञानवान् सर्वज्ञ हो जाता है दर्पण में जैसे प्रतिबिम्ब

दिखता है, वैसे उसकी आत्मा मे सब कुछ झलकने लगता है। और यही परमात्म पद है।

साधनापथ—सासारिक विषय वासना रूप झन्झटो से यह सासारिक आत्मा सहज ही छुटकारा नही पा सकती। इसे इस प्रकार के अवसर चाहिये ताकि सासारिक कार्यो के मध्य कभी साँसारिक क्षण भगुरता का बोध भी हो सके। उसे किन्ही महान् आत्माओ की स्मृति होती रहे और वह अपना साधनापथ सरल बना सके।

जितने भी पर्व या त्यौहार होते है वे सभी गृहस्थ के लिये साधनापथ का काम करते हैं। मात्र गृहस्थ को चाहिए कि वह उन पर्वो के तथ्य को समझ कर हेतुओ की ओर अग्रसर हो।

पर्वो मे सबसे महत्त्वपूर्ण पर्व दशलक्षण या पर्युषणपर्व है। दिगम्बर सम्प्रदाय मे यह प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल पचमी से तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे भाद्रपद कृष्ण द्वादसी से दस दिन तक मनाया जाता है। यह पर्व मानव मात्र का उत्थान का पर्व है। इसमे उत्तम-क्षमादि दश लक्षण धर्म का विवेचन पूर्वक अनुसरण करने को कहा गया है। इस पर्व पर जैन स्त्री पुरष यहां तक बच्चे भी सयम से रहते है। व्रतादि करते है। और तृष्णा देवी से छुटकारा पाते है।

पश्चात् इस पर्व के क्षमापन पर्व आता है। जो आश्विन कृष्णा प्रतिपदा को प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस दिन प्राणीमात्र के प्रति क्षमा भाव उत्पन्न किया जाता है। विश्व के प्राणियो के प्रति वात्सल्य प्रकट किया जाता है। अपराधो की त्याग भावना के साथ परस्पर क्षमा याचन करके वैर भाव को मिटाया जाता है।

दीपावली एक ऐसा पर्व है जिसे भारत के सभी सम्प्रदाय मानते है। घर का आगन, छत, सब ज्योतिर्मान इस दिन हो उठते है ···। इसीदिन भगवान रामचन्द्रजी विजय प्राप्त करके अयोध्या वापिस आए थे। इसीदिन भगवान महावीर ने निर्वाण पद प्राप्त किया था

और इसीदिन नानक देव ने परमात्मपद पाया था । यह पर्व सभी सम्प्रदायों के किसी न किसी तथ्य से जुडा हुआ है ।

अष्टाह्निकापर्व कार्तिक, फाल्गुन और अषाढ के शुक्ल पक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक होता है । जैन मान्यता के अनुसार इस पृथ्वी पर आठवां नन्दीश्वर द्वीप है उस द्वीप मे ५२ जिनालय वने हुए है । उनकी पूजा करने के लिए देवगण उक्त दिनों मे जाते है अव चूकि मनुष्य वहा जा नही पाता अत: उक्त दिनो पर पर्व मनाकर यही पर व्रतादि-पूर्वक भावभीनी पूजा करके कपाय को मन्द करते है ।

महावीर जयन्ती चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मनाई जाती है इस दिन भगवान महावीर ने जन्म लिया था । यह वह समय था जव देश मे वलि का प्रचन्ड प्रचार था । यज्ञो मे पशु की वलि देना अनिवार्य गिना जाता था देश मे अज्ञान और त्राहि त्राहि का कोलाहल था इस समय में भगवान महावीर ने जन्म लेकर अहिंसा का विगुल वजाया था ज्ञान की ज्योति चमकाई थी और जीव मात्र को सतपथ दिखाय था ।

दिगम्वर सम्प्रदाय मे श्रुत पचमी का पर्व ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को और ज्ञान पंचमी का पर्व कार्तिक शुक्ला पचमी को श्वेताम्वर सम्प्रदाय मनाते है इसदिन शास्त्र की पूजा की जाती है विशेष स्वाध्याय प्रवचन आदि किए जाते है दिगम्बर आम्नाय के अनुसार इसीदिन अर्थात ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को ही महान ग्रन्थ षटखण्डागम की रचना मुनि पुष्पदन्त और भूतवलि ने की थी ।

वीर शासन जयन्ति का पर्व श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को मनाया जाता है इसीदिन भगवान महावीर का सर्वज्ञ पद प्राप्त करने के बाद सर्व प्रथम दिव्यध्वनि द्वारा उपदेश हुआ था ।

रक्षा वन्धन का पर्व भी भारत मे प्रायः जैनी व जैनेतर दोनों ही मनाते है । यह पर्व श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को मनाया जाता है । जैन मान्यता के अनुसार इस दिन हस्तिनापुर में सातसौ मुनियों का उपसर्ग

दूर हुआ था अजैन मान्यता के अनुसार भी ऐसा माना ही जाता है अर्थात जैन मान्यता के अनुसार हस्तिनापुर मे जब सातसौ मुनियो का सघ आया तो पूर्व वैर का व धा कुत्सित विचार वाला बलि ने शासन सत्ता अपने हाथ मे ली थी और अपने सत्ता के अधिकार से ही उसने सातसौ मुनियो को जला देने का उपक्रम किया था। इस उपक्रम को भगवान विष्णु कुमार ने अपनी विक्रिया से वामन रूप बनाकर बलि से तीन पैर पृथ्वी का वर माग कर सातसौ मुनियों के उपसर्ग को शान्त किया था यही मान्यता अजैन (ब्राह्मणो) के इस मंत्र—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्र् महाबली ।

तेन त्वमापि बदनामि रक्ष मा चल मा चल ॥

—से जानी जाती है। सभी के घरो के द्वारो पर एक चित्र सा बनाया जाता है और उसे भोजन कराया जाता है। यह परम्परा उसका सकेत करती है जबकि हस्तिनापुर क्षेत्र के सभी मनुष्यो ने प्रतीक्षा की थी कि सातसौ मुनियो की रक्षा हो जाने के बाद हम उन्हे आहार कराकर ही भोजन करेंगे।

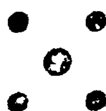
इस प्रकार हम देखते है कि प्रत्येक पर्व मूल सन्देश देकर चला जाता है और प्रत्येक वर्ष आता है। अब मानव का कर्त्तव्य रह जाता है कि वह इन पर्वों से बहुत कुछ सीखे। यदि मात्र परम्परा गत पर्व मनाते ही रहे कुछ भी बोध प्राप्त नही किया तो इससे कुछ भी हल नही होने का। पर्व तो हमारे लिए सुखद स्मृति होता है।

भारत पर्वों का देश है। इसी लिए भारत की सस्कृति मे आदर्श घुला हुआ है। पर जब से पाश्चात्य सस्कृति का प्रादुर्भाव भारत मे हुआ है तभी से भारतवासी आदर्श से दूर होते जा रहे हैं—ऐसा कुछ कुछ महसूस सा होता है।

पाश्चात्य वाले तो भारतीय संस्कृति को अपनाने को आतुर हैं और भारतवासी पाश्चात्य सस्कृति को। यह विपरीत काम भारत-वासी समझ नही पा रहे। अपनी ही सुसस्कृति से भारतवासियो को ना मालूम क्यों उदासीनता हो गई है ।

मानव मुक्त होना नही चाहता ऐसा कुछ लग रहा हे क्यों कि मुक्त होने के लिए त्याग चाहिए त्याग अपना नही रहा तो मुक्त होगा कैसे ?

अतः अपना ज्ञान, विवेक मानव को अपने ही अन्दर से अच्छी पुस्तकों, ग्रन्थ, पुराणों को पढ़कर प्राप्त करना चाहिए अच्छी पुस्तकें ही मानव का मित्र है साथी है गुरु हैं।



# समय का मूल्य

'कालातिपातमात्रेण कर्तव्यंहि विनश्यति ।'

—क्षत्रचूडामणि ११।७

## भुक्त से अतीत, भोग्य से भविष्य

प्रत्येक वस्तु का अपना पृथक् मूल्य होता है। ससार मे मूल्यरहित कोई वस्तु नही। कालका सूक्ष्मतम क्षण भाग ही क्षण-क्षण संयुक्त होकर मिनट, होरा और दिनो मे परिणत होता हे। ये दिन ही मास, ऋतु-अयन, वर्ष और युगो मे परिवर्तित होते जाते है। काल की यह सूक्ष्म गतिक्रिया है। जो काल क्षण-भाग अभी वर्तमान की सत्ता का वोध कराता है वह दूसरे ही क्षण अतीत हो जाता है। यह इसका अविच्छिन्न क्रम है, जिसमे कभी व्याघात नही होता। वर्तमान के भुक्त गर्भ से अतीत और भोग्य गर्भ से भविष्यत् काल की उत्पत्ति होती है। समय के इस सूक्ष्म रूप को जानने वालो ने मनुष्य को चेतावनी दी है कि वह रुपये-पैसे के समान ही, वल्कि उससे भी अधिक सावधानी से समय का हिसाव रक्खे, उन्होने लिखा है—

'क्षणं वित्तं क्षणं चित्तं क्षणं जीवति मानवः
यमस्य करुणा नास्ति धर्मस्यत्वरिता गतिः।'

## क्षणिक वित्त, क्षणिक चित्त

वित्त क्षण मे नष्ट हो जाता है, चित्त की स्थिति क्षण भर मे वदल जाती है और मनुष्य का जीवन-दीप क्षण मे वुझ जाता है। काल को कही करुणा नही है। धर्म की गति क्षिप्रगामिनी है; अर्थात् धर्म ही काल पर आरूढ होकर धार्मिक का अनुगमन करता है और क्योकि जीवन-क्षण-वुद्‌वुद है, और धर्म-सचय मे दीर्घसूत्रता नही करनी चाहिये। यहा शतायु जीने वाले मनुष्य को क्षणजीवी वताया है उसका यही आशय है कि जीवित व्यक्ति के परमाणुस्कन्धो मे प्रतिक्षण जन्म मरण की प्रक्रिया सचार कर रही है। जीवन के सौ वर्ष भले रहे,

परन्तु मृत्यु का तो क्षण ही आता है जो आंधी के उन्मत्त स्पर्श से दीपक के समान प्राणों का देह से अपहरण कर ले जाता है। वह क्षण कभी भी आ सकता है। दस्यु अथवा तस्कर तो रात्रि के तिमिर में किसी का कण्ठ ग्रहण करते है, परन्तु काल तो निर्भय होकर विश्व के घाट-बाट देखता घूमता है। उसे न करुणा है, न भय। 'सर्व यस्य वशादगात् स्मृतिपथं कालायतस्मै नम.'—जिसकी सत्ता के समक्ष सब कुछ स्मृति शेष रह जाता है, उस महाकाल को नमस्कार हैं। किसी विज्ञ सूक्तिकार ने कहा है—'प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः' गये हुए दिन वापस नही लौटते, यह काल ससार-भक्षक है। 'कालेन कीलित सर्वम्—ससार के यावत् पदार्थ काल से कीलित है। कोई ऐसी वस्तु नही जिसे काल स्पर्श नही करता हो। जैसे माला के पुष्पो मे से सूत्र निकलता है, वैसे ही काल समस्त जड़चेतन को विद्ध कर स्थित रहता है।

### बलाबल का इतिवृत्त

जन्म और मरण के स्मृतिपत्र समयांकन से जाने जाते जाते हैं। दिन और रात्रि समय का चक्कर लगाते है। समय से ऋतुओं का आगमन और वर्षों की गणना सम्भव होती है। 'कालेन बलिरिन्द्रः कृतः कालेन व्यवरोपितः'—काल ने बलि को इन्द्र बनाया और काल ने ही उसे हटा दिया। 'समय एव करोति बलाबलम्'—बलवान् तथा निर्बल समय के ही पर्याय हैं। सूर्य प्रातःकाल बलसमृद्ध होता है, उस के ग्रह बलवान् होते हैं और सायंकाल अस्तवेला मे वे ही बलवान् मुहुर्त क्षितिज के गर्त मे डूब जाते हैं। प्राचीन राजवंशो का इतिहास समय के बलाबल का इतिवृत्त है। जो समय के इस रहस्य को जान लेता है, वह समय का मित्र हो जाता है। उसके कानों मे समय नाद-ध्वनि करता रहता है कि जागो, उठो और अपने भूतिकर्मों मे (कल्याणकारी कार्यों मे) जुट जाओ। 'उत्थातव्य जागृतव्य योक्तव्यं भूतिकर्मसु। भविष्यत्येवेति मनः सततमव्ययैः'—कार्यसिद्धि अवश्य

होगी, ऐसा विश्वास रखते हुए व्यथा का परित्याग करो, क्योंकि 'ग्रनिर्वेद' श्रियो मूलम्' लक्ष्मी का मूल ग्रखिन्नता है। जो विघ्न-बाधाओ से खिन्न होकर कार्य से विरत हो गया उसे सिद्धि नही मिलती, क्योंकि—

'नालसा: प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च शश्वत् प्रतीक्षण.
न च लोक रवाद्भीता न क्लीबा न च मायिनः॥'

**अभी समय नहीं आया**

जो ग्रालसी है, नपुन्सक है, मायाचारी है, लोक क्या कहेगे—ऐसे विचारमूढ होकर कर्तव्य-कर्म से विमुख है, तथा जो निरन्तर प्रतीक्षा करते रहते है कि ग्रभी ग्रच्छा समय नही ग्राया, जब ग्रायेगा तब ग्रमुक कार्य ग्रारम्भ करूंगा इत्यादि विषम चिन्तन करने वाले कभी सफल नही होते, उनके पास ग्रनुकूल समय कभी नही ग्राता। वे ग्रवसर का मुख उसी प्रकार देखने को तरसते रहते हैं, जैसे वन्ध्या पुत्र-प्राप्ति को। क्योंकि ग्रवसर स्वय तो किसी-किसी भाग्यशाली के पूर्वोपार्जित पुण्य से प्राप्त होता है ग्रन्यथा उसे पुरुपार्थी स्वय ग्रागे बढकर पकड लाते है। किसी ग्रग्रेज लेखक ने लिखा है कि समय का शिर पीछें से गजा है। यदि कोई उसका सामने ग्राने पर स्वागत कर ले तो वह उसी का मित्र होकर साथ देने के लिये प्रस्तुत हो जाता है किन्तु यदि कोई स्वागत के उस दुर्लभ ग्रवसर को चूक जाए तो समय लौटकर चल देता है, क्योंकि वह गजा है, पीछे से उसे कोई पकड नही सकता। इसलिए कुछ लोग क्षण-क्षण को मूल्यवान् बनाकर सम्पन्नता के शिखरो पर जा पहुँचे ग्रौर दूसरे घन्टे ग्रौर दिवस गिनते हुये सीढियां चढने का ग्रनुकूल मुहूर्त देखते गर्त से ग्रपना उद्धार नही कर सके। किसी ने उचित ही परामर्श दिया है कि 'चलती हुई चिऊंटी भी सौ योजन जा पहुँचती है ग्रौर न चलने पर महापराक्रमी गरुड़ पक्षी एक पद भी नही पहुँच पाता'—

'गच्छन् पिपीलिको याति योजनानां शतान्यपि
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेक न गच्छति ।

### उठा हुआ प्रथम चरण

सिद्ध है कि क्रिया-सिद्धि का निवास पुरुषार्थ मे है, समय के साथ चलने में है, न कि समय की प्रतीक्षा करते रहने मे। चीनी कहावत है कि 'हजार मील लम्बी यात्रा एक कदम से आरम्भ होती है'—हजार मील चलने के लिये उठा हुआ प्रथम चरण उस मार्ग की दूरी को प्रतिपद न्यून करता जाता है। एक और एक कदम बढाते-बढाते गन्तव्य समीप आता जाता है और साहसी आरोही के चरण एवरेस्ट के शिखर पर पहुँच जाते है। जो एक चरण के महत्त्व को नही समझता वह गति की समग्रता नही पा सकता।

### समय : अनुबन्ध, शपथ, संकल्प

समय चिन्तामणि है, कामधेनु है, वाँछित धन हैं। उससे कुछ भी मांगों, पा जाओगे। समय श्रमाग्नि मे तपकर सुवर्ण बन जाता है, अवसर की सीपी मे गर्भधारण कर मुक्ताफल हो जाता है, दुरधिगम समुद्र को मथकर रत्नराशि निकाल लाता है। संसार मे जो कुछ किया गया है तथा किया जा सकता है वह समय द्वारा ही सम्भव है। यदि समय नहीं है तो कार्य नहीं हो सकता। कार्यसिद्धि के लिये बड़े-बड़े उपकरण सहायक नही होते, उसके लिये समय लगाना आवश्यक होता है। जो समय पर चूक गया उसे सिद्धि के राजपथ से हटना पड़ता है। एक मिनट विलम्ब से पहुँचने पर गाड़ी चौबीस घन्टो के लिये निकल जाएगी और घण्टे भर पूर्व जाकर बैठने से समय का दुरुपयोग होगा। अतः जिस कार्य के लिये जो समय निश्चित है, वही समय उसे दो। कोई प्रातःकाल का भोजन सन्ध्यावेला मे नही लेता, परन्तु ध्यान, सामायिक, स्वाध्याय के लिये वेला के अतिक्रमण को दोष-दृष्टि से नही देखता। किन्तु क्रियायें तो समयपात्र मे ही शोभित होती है। कार्यकलापो का कोई-न-कोई समय निश्चित होता है। 'काले पाठ-स्तवो ध्यानं शास्त्रे चिन्ता गुरौ नतिः' इसमे पाठ, स्तवन, ध्यान, स्वा-

ध्याय तथा गुरु-भक्ति सबको समय पर करना उचित कहा है। 'न हि अत्यायुपः सत्रमस्ति'—आयु बीत जाने पर कोई यज्ञ नही किया जा सकता। सब आफिस, कार्यालय, दूकान, बाजार, रेलपथ, वायुयान, आकाशवाणी अपने-अपने निर्धारित समय पर क्रियाशील होते हैं। ग्राहक को विश्वास न हो कि अमुक दूकान अमुक समय पर खुली मिलती है तो वह वहाँ नही जाता। विश्वास तथा अभिगमन का आधार समय-परवशता है। सूर्य, चन्द्र समय से बधे है। जीवन की प्रशस्ति नियमो मे हैं, अनियम से व्यभिचार-दोष उत्पन्न होते हैं। इसी हेतु से संस्कृत मे समय का अर्थ शपथ भी है, पण भी है और वेला भी है। समय, मानो, क्रियमाण कार्यो के साथ अनुबन्ध है, शपथ है। जो कार्य समय पर हो गया, वह प्रशंसित हो गया। यदि १ तारीख का समाचार पत्र २ अथवा ३ को प्रकाशित हो तो समय निकल जाने से वह पर्युषित (बासी) हो जाएगा और उसे पाठक नही पढ़ेंगे। वेला का अनतिक्रम मूल्यवान् होने के लिये आवश्यक है। एक घूंट पानी के लिये तरसकर मरने वाले के शव पर सहस्र कलशो का पानी उलीचना जैसे व्यर्थ है वैसे समय चले जाने पर किया जाने वाला पुरुषार्थ भी फल-शून्य हो जाता है। सर्प निकल जाने पर उसकी रेखा को पीटना, सूख जाने पर कूप से जल की आशा रखना, लुटे हुये धनिक से याचना करना, वर्षाकाल बीतने पर खेत में बीज वपन करना—ये अवसरहत व्यक्तियों के खेद का सवर्धन करने वाले हैं।

**आज का काम आज**

जो समय का मूल्य रखता है, समय उसका सम्मान करता है और जो समय खो देता है वह समय में खो जाता है। समय के साथ खेलने वालो से समय भी खेलता है, किन्तु समय की धूप (आतप) के साथ लगी हुई छाया को देखकर जो प्रकाश का समय रहते उपयोग कर लेते है, उन्हे अन्धकार घिरने पर अकृतित्व, अभाव और अपनी अस्तित्व-समाप्ति का भय नही रहता। किसी नीतिकार ने लिखा है—

वाह्मे समापयेत् पूर्वां पूर्वाह्णे चापह्निकम्
एवं कुर्वन्नरो नित्यं सुखनिद्रा समश्नुते।
नित्यमनृणशायी स्यान्नित्यं दानोद्यतक्रमः
नित्यमासज्जितं लघूकुर्यादतन्द्रितः ॥

'प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में दिन के पूर्वार्द्ध का कार्य समाप्त करले और पूर्वाह्न मे सन्ध्यान्त कार्यों को निबटा ले। ऐसा करनेवाला मनुष्य रात्रि मे सुखपूर्वक शयन करता है। मनुष्य को प्रतिदिन ऋणरहित होकर सोना चाहिये और दिनचर्या में किसी से लेने के स्थान पर किसी को देने का उपक्रम अधिकतर करना चाहिए। जो कार्यभार आज आ गया है उसे श्रान्तिरहित होकर नित्य ही लघु (हल्का) करने का अभ्यास करना श्रेयस्कर है, क्योंकि आज का कार्य यदि कल पर छोड़ दिया तो कल का कार्य परसों पर छोड़ना पड़ेगा। इस प्रकार समय-धन ऋण मे बदल जायगा और दैनिकचर्या गत दिवस के ऋण चुकाने मे ही समाप्त करनी होगी। मुद्रा का ऋण मुद्रा लौटाने पर चुक जाता है किन्तु समय का ऋण आयु लेकर निःशेष कर देता है। अतः 'श्व कार्यमद्य कुर्वीत' आनेवाले कल का कार्य आज ही समाप्त कर लेना बुद्धिमान् का लक्षण है। क्योकि 'विचारयति नो कालः कृतमस्य न वा कृतम्—काल यह नही विचारता कि अभी किसी ने कार्य समाप्त किया है कि नही। उसका आगमन अतर्कित और स्पर्श करुणारहित होता है। वह सहज ही अपना कार्य करने मे दक्ष है। राजाओं का कोष वीरो का बाहुबल, विद्वान की विद्या, नारी के हावभाव, कृपण का हाहाकार, वैद्य की औषधियां, मित्रों के आश्वासन, प्रिया का बाहुपाश, पुत्रो की सेवा-परिचर्या किसी मे वह सामर्थ्य नही जो काल को द्रवित कर दे। राजा-रंक सभी की जीवन-मणियां काल की मुट्ठी मे गुम्फित होकर समायी हैं। काल ने राम को वनवास दिया, श्रीकृष्ण को साधारण व्याध से विद्ध किया, सती शिरोमणि सीता को परपुरुषगृहवासिनी बनाया—उनके कौतुकों का अन्त नहीं। धनिक, निर्धन, वीर-कायर, उदय-अस्त सब समय के अधीन हैं। 'समय एव करोति बलाबलम्'—बल और अबल समय के सापेक्ष धर्म हैं। जिसने समय के इस रहस्य को जान लिया, वह जीवन का मूल्य पा गया।

—मुनि श्री विद्यानन्द

# क्षमा याचना !

प्रिय पाठक वृन्द !

प्रस्तुत पुष्प आपके कोमल हाथो मे है—यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है। यह पुष्प समय की न्यूनता के कारण अतिशीघ्र उदित हुआ है। अत. त्रुटियो का रह जाना स्वाभाविक है।

हम आपसे पाई गई त्रुटियो के लिए क्षमा चाहते है। साथ ही विश्वास भी दिलाते है कि भविष्य मे इस ओर विशेष सावधानता रखी जायेगी।

आशा है कि आपने इस पुष्प की सुगन्धि का सद्भावपूर्वक यथार्थता के साथ उपयोग किया होगा।

धन्यवाद !

विनीत

—प्रकाशक